महर्षि दयानन्द सरस्वती की उत्तराधिकारिणी परोपकारिणी सभा का मुख पत्र

वर्ष : ५९ **अंक** : २४

दयानन्दाब्द: १९३

विक्रम संवत्: पौष कृष्ण २०७४

कलि संवत्: ५११८

सृष्टि संवत्: १,९६,०८,५३,११८

सम्पादक

डॉ. दिनेशचन्द्र शर्मा

प्रकाशक-परोपकारिणी सभा, केसरगंज, अजमेर- ३०५००१

दूरभाष: ०१४५-२४६०१६४

मुद्रक-श्री मोहनलाल तँवर

वैदिक यन्त्रालय, अजमेर।

दूरभाष : ०१४५-२४६०८३१

परोपकारी का शुल्क

भारत में

वार्षिक-२०० रु., **द्विवार्षिक**-३९० रु.

त्रिवार्षिक-५८० रु.

आजीवन (१५ वर्ष)-२००० रु.

एक प्रति - १५/- रु.

विदेश में

वार्षिक-५० यू.के. पाउण्ड/८० यू.एस.डॉलर

द्विवार्षिक-९५ पाउण्ड/१५२ डॉलर

त्रिवार्षिक-१४० पाउण्ड/२२५ डॉलर

आजीवन (१५वर्ष)-५००पा./८०० डॉ.

एक प्रति - ३ पाउण्ड

एक प्रति - ४ डॉलर

वैदिक पुस्तकालय : ०१४५-२४६०१२०

ऋषि उद्यान : ०१४५-२६२१२७०

ओ३म्

विद्याविलासमनसो धृतशीलशिक्षा:,
सत्यव्रता रहितमानमलापहारा:।
संसारदु:खदलनेन सुभूषिता ये,
धन्या नरा विहितकर्म परोपकारा:।।

RNI. No. ३९५९ / ५९

परोपकारी

दिसम्बर द्वितीय २०१७

अनुक्रम

०१. संस्कार, संस्कृति और संस्कृत	सम्पादकीय	०४
०२. उपासना : एक बौद्धिक कार्य	डॉ. धर्मवीर	०६
०३. कुछ तड़प-कुछ झड़प	प्रा. राजेन्द्र 'जिज्ञासु'	१०
०४. वेद ईश्वरीय ज्ञान क्यों?	पं. उदयवीर शास्त्री	१४
०५. प्राणोपासना-५	तपेन्द्र वेदालङ्कार	१९
०६. शङ्का - समाधान - १५	डॉ. वेदपाल	२२
०७. वैदिक पुस्तकालय के नये संस्करण		२४
०८. पुस्तक परिचय	देवमुनि	२५
०९. हिन्दू जाति के रोग का वास्तविक...	भाई परमानन्द	२६
१०. संस्था-समाचार		२८
११. स्वामी सच्चिदानन्द जीवन-परिचय...	रामनिवास गुणग्राहक	२९
१२. उत्तम समाज की उत्पत्ति उत्तम...	प्रकाश चौधरी	३२
१३. दिशाहीन राजनीति : राष्ट्र के लिये...	महात्मा चैतन्यमुनि	३८
१४. पाठकों की प्रतिक्रिया		४१
१५. आर्यजगत् के समाचार		४२

www.paropkarinisabha.com
email : psabhaa@gmail.com

- उपनिषद्, दर्शन, प्रवचन आदि सुनने हेतु बटन दबाएँ -

www.paropkarinisabha.com → Daily Pravachan

लेख में प्रकट किए विचारों के लिए सम्पादक उत्तरदायी नहीं है। किसी भी विवाद की परिस्थिति में न्यायक्षेत्र अजमेर ही होगा।

सम्पादकीय

संस्कार, संस्कृति और संस्कृत

'संस्कृति' बहुप्रचलित, लोकप्रिय और मार्मिक शब्द है। लेखकों, दार्शनिकों, समाजशास्त्रियों और धर्मप्रचारकों ने इसे विभिन्न प्रकार से परिभाषित और आत्मसात् किया है। हम आर्यों के लिए तो यह इस कारण और भी महत्त्वपूर्ण है, क्योंकि यह यजुर्वेद में प्रयुक्त हुआ है और हमारे परिपूर्ण एवं स्वस्थ समाज की आधारशिला को यह दर्शाता है एवं व्याख्यायित करता है।

संस्कारों के निरन्तर अभ्यास से ही संस्कृति का निर्माण होता है। मानवीय तर्क-बुद्धि सामान्यत: संस्कारों के विषय में अंधविश्वासी या फिर बहुत अधिक दुराग्रही हो जाती है। लेकिन संस्कारों का महत्त्व महर्षि दयानन्द ने जीवन जीने की पद्धति से लिया है। मनुष्य के समग्र व्यक्तित्व के निर्माण के सोपान ही संस्कार हैं जिनके पालन की व्यवस्था संस्कृति कहलाती है। संस्कृति विश्वव्यापी प्रत्यय है। जिससे मनुष्य अपने अभीष्ट लक्ष्य को प्राप्त करता है। युक्ति-युक्त विचार विवेचन से निर्मित हुआ मानव ही **'संस्कृत'** (कल्चर्ड) कहलाता है। इसलिए भारतीय संस्कृति में **'संस्कृत'** केवल एक भाषा नहीं है अपितु संपूर्ण जीवन को जीने की कला है। भारतीय संस्कृति अपने सर्वांग संपूर्ण स्वरूप में सर्वग्राही रही है।

विश्व में सभी सभ्यताओं का जन्म उस देश और काल की संस्कृति से हुआ है। आधुनिक विचारकों को देखें, तो संस्कृति गत्यात्मक शब्द है लेकिन इसका मूल उत्स हमेशा शाश्वत बना रहता है। संस्कृति विभिन्न कारकों के अनुसार बाह्य रूप में देश-कालानुरूप परिवर्तित अवश्य होती है, लेकिन उसकी आत्मा कभी विच्छिन्न नहीं होती, अविरल धारा के रूप में संस्कृति दैनन्दिन जीवन का अविभाज्य अंग बनकर सर्वत्र व्याप्त हो जाती है। इसीलिए प्रत्येक समाज में संस्कृति के संकट का प्रश्न उत्पन्न होता रहता है और तब संस्कृति-संरक्षण के विभिन्न आयाम प्रस्फुटित होते हैं। लोकदृष्टि में संस्कृति के अनन्त पक्ष हैं जिसमें बौद्धिकता, अध्यात्म, यज्ञ, आचार-विचार, शिक्षा, सौन्दर्य, कला इत्यादि सब समाहित हो जाते हैं। संस्कृति आत्मस्वरूप है तो सभ्यता शरीरस्वरूप। इसीलिए वैशेषिक दर्शन ने कहा **यतोऽभ्युदयनि:श्रेयस्सिद्धि: स धर्म:** अर्थात् अध्यात्म और लोक व्यवहार दोनों की सिद्धि धर्म के द्वारा ही संभव है। इसलिए धर्म स्वयं संस्कृति है, इस प्रकार संस्कृति की संरचना धर्म-आधारित ही होती है और यहाँ धर्म का अभिप्राय मत, सम्प्रदाय या विभिन्न विचारधाराओं से नहीं है अपितु किसी भी तत्त्व का मूल आधार ही धर्म कहा गया है।

महर्षि दयानन्द ने पुनर्जागरण काल में वैदिक संस्कृति की जो दशा देखी उसमें नारी, किसान, दलित, शासक, शिक्षक, तथाकथित संन्यासी इत्यादि सभी संस्कृति और सभ्यता के मूल विचारों से परे जा चुके थे। वेद में संस्कृति के मूल तत्त्व का विवेचन जिस रूप में किया गया, 19वीं शताब्दी तक आते-आते उसका स्वरूप जड़ हो गया। संस्कृति, लोक कल्याण में वेश-भूषा, रीति-रिवाजों से व्याख्यायित नहीं होती अपितु संस्कृति स्वयं जीवन होती है। इसीलिए भारत देश भूखण्ड बाद में है और माँ पहले है। यही भाव संस्कृति के द्वारा प्रवाहित होता है। पीढ़ी-दर-पीढ़ी संस्कृति के सूत्र जैनेटिक कोड की तरह संचारित होते हैं और यदि कभी छुप भी जायें तो अनुकूल स्थिति में उनमें पुन: अंकुरण होना शुरू हो जाता है, यही संस्कृति की जीवन्तता है। संस्कृति परम्पराओं का नाम भी नहीं है, क्योंकि परम्पराएं किसी देश, काल विशेष में स्वीकार भले ही कर ली हों लेकिन वे शाश्वत रूप में स्वीकार नहीं की जा सकतीं।

संस्कृति संस्कार के सतत व्यवहार से सुदृढ़ होती है। इसीलिए महर्षि दयानन्द ने संस्कारविधि में सोलह संस्कारों के द्वारा मानव के समग्र निर्माण की रूपरेखा को विवेचित किया है। चन्द्रमा की सोलह कलाएँ जब पूर्ण होती हैं तब पौर्णमासी का चन्द्र कहलाता है। जिसमें चन्द्रमा का समग्र परिपूर्ण स्वरूप दृष्टिगोचर होता है। इस प्रकार संस्कारों से भी मनुष्य का समग्र विकास पहचाना जाता है। पारिवारिक और सामाजिक कर्त्तव्यों में संस्कारों की गहरी भूमिका है।

मनुष्य को सुसंस्कृत (कल्चर्ड) कैसे बनाया जाय, यही संस्कृति का ध्येय माना जा सकता है। ऋषि दयानन्द ऐसे विलक्षण चिन्तक थे जिन्होंने योगमय जीवन को स्वीकार करते हुए वैदिक सिद्धान्तों के आधार पर मानव के निर्माण के बहुआयामी पक्षों का विवेचन अपने चिन्तन में किया। उन्होंने सूक्ष्म से सूक्ष्म विषय, जिनसे मनुष्य के व्यवहार में परिवर्तन आता है और जीवन जीने की साधना और जीवन के उद्देश्य जहाँ भ्रमित हो जाते हैं ऐसे अनेक बिन्दुओं पर चेतावनी देते हुए उनसे बचने का आदेश दिया है। क्योंकि व्यवहार में आचरण का परिमार्जन निरन्तर होना चाहिए, यही संस्कृति की व्यवस्था है।

आधुनिक प्रौद्योगिकी के युग में जहाँ सूचना तकनीक ने जीवन के प्रत्येक पक्ष को छू लिया है ऐसी अवस्था में लोग यह अनुभव करते हैं कि संस्कृति जैसी संकल्पना की आवश्यकता नहीं है। लेकिन संस्कृति आभ्यन्तर विषय है जिसका प्रस्फुटन बाह्य रूप में सभ्यता में देखा जाता है। संस्कृति मनुष्य की भाषा, रहन-सहन और रीति-रिवाजों से अभिव्यक्त अवश्य होती है लेकिन केवल इसे ही संस्कृति आधुनिक काल के कुछ विद्वान मानते हैं, वह स्वीकार करने के योग्य नहीं है।

आर्ष दृष्टि से संस्कृति वस्तुतः यज्ञीय जीवन है जिसमें मनुष्य वृक्ष, जल, वायु, पृथ्वी, पशु इत्यादि के साथ यथायोग्य व्यवहार कर परिवार में सौहार्दपूर्ण मधुमय जीवन को जीता हुआ अपने लक्ष्यों को प्राप्त करता है। महर्षि दयानन्द ने इसलिए वर्णव्यवस्था, आश्रम-व्यवस्था, तीन ऋण, पंच महायज्ञ, और 16 संस्कारों का उपदेश देते हुए व्यक्तिगत और सामाजिक दोनों ही जीवन में यशस्वी होकर ऐश्वर्यवान जीवन को जीते हुए आनन्द को प्राप्त होने का वैदिक उपदेश दिया है।

आज आर्य समाज ही नहीं अपितु भारत के अन्यान्य समाजों में संस्कृति का स्वरूप जड़ हो गया है। वह केवल व्याख्यानों और लेखन तक ही सीमित होकर बौद्धिक विलास की वस्तु बन गया है जबकि सरकारें मेले, पर्यटन, नृत्य, हस्तकलाओं के संवर्द्धन को ही संस्कृति का संवर्द्धन मानती हैं और उन्हीं के लिए संस्कृति मंत्रालय उन्हें संपोषित करते हैं। महर्षि दयानन्द निश्चय ही दूरद्रष्टा थे जिन्होंने संस्कृति के द्वारा राष्ट्रीय भावना को समृद्ध करने और मानव-मानव के बीच स्नेह और प्रेम की भावना से जीवन जीने का विचार मुख्यतः संस्कारों के रूप में दिया। इन्हीं संस्कारों के सुदृढ़ीकरण से ही मनुष्य का जीवन दिव्य बनता है और राष्ट्र में सार्वभौमिक मूल्यों के संचार के लिए अवसर प्राप्त होते हैं। इसीलिए अथर्ववेद कहता है-

दिवं च रोह पृथिवीं च रोह। राष्ट्रं च रोह द्रविणं च रोह।।

अर्थात् हे मनुष्य! भौतिक उन्नति और आर्थिक उन्नति के साथ ही जीवन में आध्यात्मिक उन्नति भी करो।

संस्कृति और संस्कार एक तरह से पर्याय ही हैं। संस्कार व्यक्तिपरक होता हुआ विराट् रूप में, सामाजिक और राष्ट्रीय रूप में **संस्कृति** बनता है। यदि संस्कार अर्थात् मूल में अस्पष्टता, अपवित्रता, दुर्भावना है, तो संस्कृति भी उसी रूप में अभिव्यंजित होगी। ऐसी स्थिति में संस्कार विकार होंगे और संस्कृति **विकृति** ही कही जाएगी। संस्कृति की विराटता, व्यापकता और स्वीकृति ही उसकी महत्ता एवं अनिवार्यता को द्योतित करते हैं। दुर्भाग्य से, संस्कृति शब्द का व्यापक प्रचार हुआ, परन्तु उसके आधारभूत शब्द 'संस्कार' का प्रचार कम ही है। संसार की सभी मानवीय सभ्यताओं में संस्कारों के विकृत रूप देखने को मिलते हैं, परन्तु ऋषियों द्वारा उत्तम मनुष्य एवं समाज के निर्माण के आधारभूत सोलह संस्कारों की महत्ता निर्विवाद और सर्व स्वीकार्य ही है। भूमंडल पर जो कुछ श्रेष्ठ और वरेण्य है वह इन्हीं संस्कारों और इनसे निर्मित संस्कृति पर ही आश्रित है, अतः कहा गया है-

सा प्रथमा संस्कृतिर्विश्ववारा

महर्षि कहते हैं **संस्कृति** अर्थात् **विद्यासुशिक्षाजन्मनीतिः।**

इस सुन्दर शब्द की इससे श्रेष्ठ परिभाषा हो ही नहीं सकती।

इसलिए संस्कार, संस्कृति और संस्कृत यही भारतीय चिन्तन का आधार है और यही आर्यसमाज को अभीष्ट है। विभिन्न कालों में संकटों से गुजरती हुई यह चिन्तन पद्धति आज नवोन्मेष की ओर अग्रसर होती हुई अक्षुण्ण रही है। यही धरोहर है और यही विरासत है जिसका सजग प्रहरी आर्यसमाज है।

-दिनेश

प्रवचनमाला-१५

उपासना : एक बौद्धिक कार्य

प्रवचनकर्त्ता - डॉ. धर्मवीर

लेखिका - सुयशा आर्य

युञ्जते मनऽउत युञ्जते धियो विप्रा विप्रस्य बृहतो विपश्चितः।
वि होत्रा दधे वयुनाविदेकऽइन्मही देवस्य सवितुः परिष्टुतिः।।

यजु.५-१४

हमारे बहुत सारे मित्र कहते हैं-ये आर्यसमाजी लोग मूर्तिपूजा तो छुड़ा देते हैं, पर सिखाते कुछ भी नहीं, उसका कोई विकल्प नहीं देते तो आदमी उससे भी चला जाता है और इससे भी चला जाता है।

बहुत अंशों में उनका विचार ठीक है, हम उसको ईश्वर का स्वरूप तो बहुत समझा देते हैं, लेकिन उस निराकार स्वरूप का उपासना में प्रयोग कैसे हो- यह नहीं बताते, क्योंकि हमको उसका अभ्यास नहीं होता, इसलिए नहीं करते या उसकी परम्परा हमने नहीं डाली हुई। मन्त्र इसी बात को कह रहा है। मन्त्र कह रहा है, आप बाहर जब किसी का ध्यान करते हैं, तो क्या आपके हाथ-पैर चलते हैं? नहीं चलते। जैसे ही ध्यान या विचार का प्रश्न आएगा, शरीर की अधिक से अधिक क्रियायें निष्क्रिय होती चली जायेंगी। कोई काम हाथ में है और आपका ध्यान किसी दूसरी जगह गया तो काम ही छूट जाएगा। हाथ से कलम ही छूट जायेगी। विचार जब करते हैं, मन से करते हैं, चाहे वो संसार के पदार्थों का करें या ईश्वर का करें। अब प्रश्न यह है कि हम मन से विचार करते हैं, ये तो सब को पता है और सब मन से ही विचार करते हैं और सवेरे से शाम तक पूरा दिन संसार के पदार्थों पर विचार करते ही व्यतीत होता है। उपासना में भी आप यही करते हो। जब मन से उपासना करनी है तो जो बाहर कर रहे हो, वही अन्दर करना है। वस्तु बाहर है तो बाहर देखकर आप सोचते हो। आप सोचते हो, आँख से देखा नहीं तो भक्ति कैसे होगी। भक्ति तो आँख के देखने से नहीं हो रही है, भक्ति विचार से हो रही है। देखने के बाद आप, देखने की बात को विचार में ले आते हो, करते तो विचार से हो। अगर देखे बिना ही विचार बन सकता हो तो फिर देखने की क्या आवश्यकता है? देखना तो एक का साधन है जो विचार के लिए सहायक है। देखने से ज्ञान हुआ और ज्ञान पर चिन्तन हुआ। ज्ञान में उसके स्वरूप का, मूर्ति के रूप का, रंग का, स्थान का बोध हुआ। अब उसके साथ जो आपको चिन्तन करना है वो आँख से थोड़े ही करते हो। चिन्तन तो मन से करते हो।

जिन चीजों का रूप नहीं है उनका भी तो आप चिन्तन करते हो। पाँच इन्द्रियों में रूप तो एक है, तो रूप, रस, गंध, स्पर्श, शब्द आदि में रूप को हटा दो तो बाकि चारों का चिन्तन आप बिना आँख के ही करते हो। तो ये आग्रह इसलिए व्यर्थ है कि इन्द्रियाँ हमारे उपकरण का काम कर रही हैं और उपकरण की आवश्यकता नहीं हो तो हमारे काम में कोई बाधा नहीं आती। अगर काम करने के लिए साधन की आवश्यकता हो, तो बाधा आएगी। हम रास्ते में चल रहे हैं, चलने के लिए देखने की जरूरत है, देखा नहीं तो गिर जायेंगे। यहाँ देखने की आवश्यकता है। लेकिन हम बैठे हैं, विचार कर रहे हैं, तो हमें आँख खोलने की भी आवश्यकता नहीं है। हम आँख से कोई काम ही नहीं कर रहे, इसलिए उपासना में किसी इन्द्रिय से काम नहीं लेते हैं। न आँख से, न कान से, न नाक से, न त्वचा से, न जिह्वा से, किसी से भी नहीं। जब किसी से काम ही नहीं ले रहे हो, तो उसको सक्रिय रखने का मतलब क्या है, उसे क्यों सक्रिय रखना है, इसलिए उपासना में यह सारी इन्द्रियाँ अपने आप ही निष्क्रिय होंगी, क्योंकि इनका कोई उपयोग नहीं है। बाहर की उपासना में आप इनका उपयोग करते हो, इसलिए आप सक्रिय रहते हो। लेकिन उपासना जब मन से होगी तो फिर इनके उपयोग की आवश्यकता ही नहीं होगी, इसलिए किसी को भी यह शिकायत नहीं हो सकती कि मेरा हाथ टूटा हुआ है, इसलिये मैं उपासना कैसे करूँ? अगर हाथ टूटा हुआ है, इससे मूर्ति पर फूल तो नहीं चढ़ा सकता, माला तो नहीं पहना सकता, माला

का जप तो नहीं कर सकता। जो मेरे हाथ से करने के काम हैं, निश्चित रूप से वो मैं नहीं कर सकता। लेकिन जब सोचने की बात आएगी, विचार करने की बात आएगी तो मुझे इनमें से किसी की भी आवश्यकता नहीं है, चाहे कुछ भी न हो।

मन्त्र कह रहा है–

युञ्जते मन उत युञ्जते धिया।

हम उपासना करते हैं तो सारी इन्द्रियों को काम में लेना चाहते हैं। लेकिन वेद कह रहा है, उपासना करने के लिए मन और बुद्धि पर्याप्त है। मन और बुद्धि से निश्चय करना है। मन से विचार किया और बुद्धि से निश्चय किया तो काम तो हो ही जाएगा, उसमें कोई कठिनाई आएगी ही नहीं।

कैसे करेंगे मन और बुद्धि से विचार? बाहर विचार करते हो कि यह खंभा लंबा है, चौड़ा है, काला है, सफेद है, पेड़ कैसा है, मकान कैसा है? उपासना में भी यही करना है, उस भगवान् को जानो ओर सोचो कैसा है। जैसा यहाँ सोच रहे हो, वैसे वहाँ सोच लो।

युञ्जते मन उत युञ्जते धिया, विप्रो विप्रस्य बृहतो विपश्चितः

अन्दर सब देख नहीं पाते हैं, देख सकते हैं लेकिन देख पाते नहीं हैं। उसमें और कोई कारण नहीं है, कारण इतना सा ही है कि बाहर कुछ ज्यादा अच्छा लग रहा है, अन्दर कुछ बन्धन लग रहा है, कम अच्छा लग रहा है, रुचि नहीं बन रही है। यदि इतना ही हो जाए कि मुझे बाहर की दुनिया जितनी अच्छी लग रही है, भीतर उससे अधिक अच्छी लगे तो मैं बाहर देखूँगा ही क्यों। कोई अच्छी सी कल्पना आपके मस्तिष्क में घूम रही है, हो सकता है कि आपको कहीं बड़ा लाभ होने वाला हो, कोई आर्थिक उपलब्धि होने वाली हो, हो सकता है कि आप किसी ऐसे व्यक्ति के पास जा रहे हों जो आप पर बहुत कृपालु होने वाला है और आप गाड़ी में बैठे हैं तब आपको वो दिखाई तो देगा नहीं, पर आप उसके बारे में जो कुछ जानते हैं उसे दोहरायेंगे, लेकिन तब ना जुबान काम में लेंगे और ना आँख काम में लेंगे, तब केवल मन से आप उसका चिन्तन करेंगे, विचार करेंगे। एक बात आप याद रखिए, मन ज्ञानेन्द्रिय भी है और कर्मेन्द्रिय भी है। जो काम आप इन्द्रियों के माध्यम से करा रहे हैं, वो इन्द्रियाँ तो कर ही नहीं रहीं। वास्तव में इन्द्रियों के माध्यम से कर तो मन ही कर रहा है। गोलक से देखा तो जाता नहीं। गोलक के माध्यम से मन वस्तु तक पहुँचता है। मन को प्राप्ति हो रही है ज्ञान की, उसे वो आगे भेजेगा, इसलिए जो बात आप आँखों से देख सकते हो, वो आँख बन्द करके मन से भी देख सकते हो ।

मन्त्र कहता है कि पहले तो करने वाला विप्र होगा, मतलब बुद्धिमान् होगा। सामान्य व्यक्ति सब कुछ देखते हुए भी कुछ नहीं देखता है और बुद्धिमान् व्यक्ति थोड़ा सा देखते हुए भी सब कुछ देखता है। आप किसी व्यक्ति से बात कर रहे हैं, आपको घंटा भर बात करने पर कुछ भी समझ में नहीं आता। कोई व्यक्ति किसी के एक वाक्य से, किसी शब्द से, आँख के किसी इशारे से, हाथ-पैर के चलाने से बात समझ लेते हैं कि ये क्या कहना चाहता है। इसके लिए थोड़ा आपको बौद्धिक दृष्टि से सतर्क होना होगा, सावधान होना होगा।

विप्रा विप्रस्य बृहतो विपश्चितः।

बुद्धिमान् व्यक्ति ही उस बुद्धिमान् ईश्वर के काम को समझ सकता है। वो विपश्चित है। सामान्य रूप से विपश्चित शब्द का अर्थ विद्वान् होता है। यदि आप उस बुद्धिमत्ता का अनुभव कर सकेंगे तो निश्चित रूप से उसके अन्दर आपकी रुचि और अधिक बढ़ जाएगी। यदि हमें कुछ उत्सुकता जगती है, कुछ जिज्ञासा बनती है तो हमारी जिज्ञासा हमको और आगे ले जाती है।

हमको लगता है कि परमेश्वर पूरा का पूरा हमको पहली ही दृष्टि में दिख जाए। पहली दृष्टि में तो हमको कोई भी नहीं दिखता। जब हम यात्रा पर जाते हैं, तो हम यात्रा पर क्यों चलते रहते हैं? रुक क्यों नहीं जाते? दिखता तो कुछ है नहीं लेकिन हमारा बढ़ता हुआ हर पग हमें यह अनुभव कराता है कि हम अपने लक्ष्य के कुछ अधिक निकट जा रहे हैं। जो लोग यह समझते हैं कि परमेश्वर की उपासना का लाभ शायद तभी होगा जब अन्तिम दिन आएगा, जब उससे हम सीधे मिल ही जायेंगे- ऐसा नहीं है। जैसे आप किसी ठण्डी जगह पर जा रहे हों, तब उस ठण्डी जगह का प्रभाव जहाँ तक होगा, आपको वहीं से

अनुभव होने लगेगा कि आप किसी ठण्डे स्थान पर जा रहे हैं। किसी नगर में आप जाते हैं तो उसकी पहचान स्थानों से, भवनों से, रास्तों से, रास्ते में पड़ने वाले वृक्षों से आपको होती रहती है और आप उस पहचान को लेकर के आगे-आगे बढ़ते हैं। आपके मन के जो सन्देह निवृत्त होते जाते हैं, वो सन्देह आपको ये नहीं कहते कि पता नहीं आएगा कि नहीं आएगा, पहुँच पायेंगे कि नहीं पहुँच पायेंगे। वैसे ही जब आप परमेश्वर के बारे में जानते हैं तो जानी हुई चीज जहाँ-जहाँ आपको मिलेगी, दिखाई देगी, अनुभव में आएगी उतना-उतना आपको उसका विश्वास बढ़ता जाएगा। उपासना का एक क्षण के किये का भी लाभ है और उपासना का वर्षों किये का भी लाभ है। थोड़े से थोड़ा लाभ है, अधिक से अधिक लाभ है।

बृहतः, वो महान् है, वो विद्वान् है और एक विशेषण है इसमें **वयुनावित्**। बड़ा रोचक विशेषण है। दुनिया में हमारी जो गति है, स्थिति है, वो इसलिए है कि हमारे बारे में दूसरा नहीं जानता या बहुत कम जानता है। मैं क्या सोचता हूँ-ये दूसरा नहीं जान सकता। मैं क्या चाहता हूँ, दूसरा नहीं जान सकता। मैं कितना जानता हूँ, दूसरा नहीं जान सकता। मेरे पास कितना बल है, धन है, जब तक प्रयोग में नहीं आएगा, दूसरा नहीं जान सकता और शायद यही हम सबके लिए बचाव का कारण भी है। हर व्यक्ति डरता ही तो है, पता नहीं क्या करेगा? यदि पता हो जाए फिर तो डर का कोई प्रश्न ही पैदा नहीं होता। तो यह कहता है कि हम नहीं जानते कि वो कैसा है। वो **बृहतः विपश्चितः** है। हमें थोड़ा सा जो दिखता है वही जानते हैं, बच्चा कोई गलती करके आया और कहता है-नहीं पिताजी, मैंने तो नहीं की। लेकिन **वयुनावित्** का अर्थ है, वो मेरे अच्छे-बुरे सबको जानता है। मैं बुरा करूँ वो भी उससे छिपता नहीं है और मैं अच्छा करूँ तो भी उससे छिपता नहीं है। जब वह मेरे सब कर्मों को जानता है, तो उसके और मेरे व्यवहार में कहीं गलती हो कैसे सकती है? मैं उससे छिप ही नहीं सकता। मैं उससे अपने को बचा ही नहीं सकता। तो विशेषण में **वयुनावित्** शब्द का अर्थ करते हुए स्वामी जी कहते हैं कि वो मेरे ज्ञान को, अच्छाई को, बुराई को पूर्ण रूप से जानता है और सदा से ही जानता है। जो परमेश्वर साक्षात् है और सबके साथ सदा है, जो मेरे अच्छे-बुरे दोनों कर्मों को संपूर्ण रूप से जानता है, उससे बचने का प्रयास करना मेरी अज्ञानता का ही तो प्रतीक हो सकता है, अज्ञानता का ही परिणाम हो सकता है तो इसलिए कहा कि **वयुनावित्**। वह बड़ा है, वह विद्वान् है वो मेरे अच्छे-बुरे दोनों कर्मों को जानता है।

उपासना का प्रकार क्या होगा-आप यह सोचो कि आप मन्दिर में जाकर उपासना कैसे करते हो? कुछ देर देखकर बैठ जाते हो और बैठने के बाद फिर देखते नहीं रहते, फिर आप आँखें बन्द करके कुछ उसी के बारे में बोलते हो। आप उसे कहते हो यह स्तुति है। यदि यह बाहर स्तुति, उपासना है, तो अन्दर भी उपासना, स्तुति ही होगी, क्योंकि उपासना के रूप में आप बाहर जो काम कर रहे हो, वो उपासना समझकर कर रहे हो। उपासना जिसकी कर रहे हो, उसके बारे में ही तो कुछ बोल रहे हो। तो फिर परेशान होने की कोई बात ही नहीं है, आँख बन्द करके यही बात उसके बारे में कहो, जिसके लिए तुम बैठे हो। और जब उसके बारे में ऐसी ही बात कहोगे, तो उसके बारे में की हुई बात उसकी उपासना है। इतना आसान है यह उपासना करना । केवल विषय ही तो बदला है आपने

ईश्वर का आश्रय न करके कोई भी मनुष्य प्रजा की रक्षा नहीं कर सकता। जैसे ईश्वर सनातन न्याय का आश्रय करके सब जीवों को सुख देता है, वैसे ही राजा को भी चाहिये कि प्रजा को अपनी न्याय-व्यवस्था से सुख देवे।

-महर्षि दयानन्द, यजुर्वेद, भावार्थ ७.३९

मनुष्यों को चाहिये कि सदा यज्ञ का आरम्भ और समाप्ति को करें और संसार के जीव को अत्यन्त सुख पहुँचावें।

-महर्षि दयानन्द, यजुर्वेद, भावार्थ ८.६२

जब तक मनुष्य सुख-दुःख, हानि और लाभ की व्यवस्था में परस्पर अपने आत्मा के तुल्य दूसरे को न जानते तब तक पूर्ण सुख को प्राप्त नहीं होते, इससे मनुष्य लोग श्रेष्ठ व्यवहार ही किया करें।

-महर्षि दयानन्द, यजु.,भा ५.४०

परोपकारिणी सभा के प्रधान डॉ. धर्मवीर के प्रति
श्रद्धाञ्जलि गीत
(तर्ज- है प्रीत जहां की रीत सदा...)

पं. सत्यपाल 'पथिक'

पं. सत्यपाल 'पथिक' वर्तमान में आर्यसमाज के प्रतिष्ठित कवि हैं। आपके लिखे भजन आर्यसमाज ही नहीं अपितु पौराणिक मन्दिरों में भी श्रद्धापूर्वक गाये जाते हैं। आचार्य डॉ. धर्मवीर जी के आकस्मिक निधन से उन्हें जो पीड़ा हुई, आर्यजगत् की इस क्षति से मर्माहत हो उन्होंने अपने भाव कविता के रूप में लिखे। असावधानीवश यह कविता धर्मवीर जी के स्मृति ग्रन्थ 'वेदपथ के पथिक' में ना छप पाई। इसलिये आर्यजनों के समक्ष यह कविता परोपकारी में दी जा रही है। -**सम्पादक**

ऋषिराज दयानन्द के सपने साकार बना कर चले गये।
सबके प्रिय डॉक्टर धर्मवीर इतिहास रचाकर चले गये।

ऋषिराज दयानन्द के सपने साकार...

१. सब सज्जन पुरुष खुले दिल से इक बात हमेशा कहते हैं।
शुभ कर्मशील इन्सान सदा दुनियां के दिलों में रहते हैं।
सूरज की तरह दिखने वाले आलोक फैलाकर चले गये।
सबके प्रिय डॉक्टर धर्मवीर इतिहास रचाकर चले गये।

ऋषिराज दयानन्द के सपने साकार...

२. उपकार भावना से सबको सन्मार्ग दिखाते देखा है।
उलझे मत वाले लोगों की उलझन सुलझाते देखा है।
बदसूरत चेहरे वालों को दर्पण दिखलाकर चले गये।
सबके प्रिय डॉक्टर धर्मवीर इतिहास रचाकर चले गये।

ऋषिराज दयानन्द के सपने साकार...

३. गम्भीर सरल उपदेशों से हर दिल को लुभाया करते थे।
नस-नस में उतर जाने वाले सन्देश सुनाया करते थे।
इस वैदिक जीवन शैली को घर-घर पहुँचाकर चले गये।
सबके प्रिय डॉक्टर धर्मवीर इतिहास रचाकर चले गये।

ऋषिराज दयानन्द के सपने साकार...

४. कब कौन सा पत्ता पीपल को पतझड़ की नमस्ते कह जाये।
संसार-वृक्ष चुपचाप खड़ा हाथों को मसलता रह जाये।
क्या कहें 'पथिक' सबके दिल में निज प्यार बसाकर चले गये।
सबके प्रिय डॉक्टर धर्मवीर इतिहास रचाकर चले गये।

ऋषिराज दयानन्द के सपने साकार बना चले गये।

कुछ तड़प-कुछ झड़प

प्रा. राजेन्द्र 'जिज्ञासु'

श्री चन्द्रभानु जी सोनवणे- वैदिक सिद्धान्तों पर डॉ. ज्वलन्तकुमार जी के एक ग्रन्थ का दूसरा भाग छपा है। इसके कुछ अध्यायों का ही मैंने अभी अध्ययन किया है। सारी पुस्तक तो समय मिलने पर कुछ ठहरकर ही पढ़ पाऊँगा। कुछ अध्याय बहुत ठोस व पठनीय हैं। जिन लेखकों के लेख इस ग्रन्थ में दिये गये हैं, उनका जीवन परिचय भी पीछे दिया गया है। इनमें श्रीमान् डॉ. चन्द्रभानु जी सोनवणे का परिचय भी महाराष्ट्र में किसी से प्राप्त करके दिया गया है। अच्छा होता यदि डॉ. ब्रह्ममुनि जी उनका परिचय लिखते अथवा आदरणीय कुशलदेव जी लिखित उनका परिचय दिया जाता।

आर्यसमाजी पत्रों में 'हिन्दी को आर्यसमाज की देन' विषय पर लिखनेवाले प्रायः सब लेखक यही लिखते चले आ रहे हैं कि मानो चन्द्रभानु जी प्रायः आर्यसमाज से बाहर के व्यक्ति थे। वह गुरुकुल के स्नातक थे यह तो ज्वलन्त जी ने लिखा है। मैंने उन्हें बताया कि वह शोलापुर डी.ए.वी. कॉलेज में मेरे सहकारी थे। लम्बे समय तक आर्यसमाज के मन्त्री रहे। उनका चिन्तन बड़ा गम्भीर था। होम्योपैथी का उनका ज्ञान बहुत अच्छा था। स्वाध्याय प्रेमी तो थे, परन्तु आर्य साहित्य का उनका व्यापक अध्ययन नहीं था। उनकी पत्नी भी गुरुकुल की स्नातिका थीं। आप प्राचार्य वेदकुमार जी वेदालङ्कार के सहपाठी थे। धर्मप्रेमी थे, परन्तु मिशनरी भावना उनमें नहीं थी। बहुत योग्य थे, परन्तु कभी प्रचारार्थ तड़प से किसी समाज के कार्यक्रम में भाग लेने के लिये समय नहीं देते थे। किसी उत्सव तथा सम्मेलन में भाग लेकर संगठन को सुदृढ़ नहीं बनाया। अपने जीवन के अन्तिम दिनों में मुझे मिलने के प्रयोजन से वे हरिश्चन्द्र गुरुजी की संन्यास दीक्षा में पधारे थे। बहुत सज्जन थे। विचारों में बहुत मौलिकता थी। स्मृति अच्छी थी। लिखा तो बहुत स्वल्प, परन्तु लिखा ठोस। उनकी सेवाओं को भुलाया नहीं जा सकता। उनके जीवन के कुछ प्रेरक प्रसंग कभी फिर लिखे जायेंगे। मेरे व्याख्यानों में श्री बहालसिंह जी जिला बिजनौर का प्रसंग वह सुनते रहे। अपने पीएच.डी. के शोध प्रबन्ध में देने के लिये उस नींव के पत्थर का जीवन-परिचय मुझसे मँगवाया था। उनका उच्चारण बहुत शुद्ध था। उन्हें लिखकर कभी काटना नहीं पड़ता था।

'सत्यार्थप्रकाश और इस्लाम'- अपने इस विषय के एक मौलिक लेख में उपाध्याय जी ने लिखा है, ''सत्यार्थप्रकाश में इस्लाम का भी खण्डन है, इसलिए मुसलमान लोग सत्यार्थप्रकाश से बहुत ही क्रुद्ध हैं, परन्तु उनको यह पता नहीं कि सबसे अधिक इस्लाम का खण्डन मुसलमानी किताबों में है, जिसके कारण इस्लाम का रूप ही बदल गया है।''

आजकल के इस्लामी साहित्य का यदि ऋषि दयानन्द से पूर्वकाल के इस्लामी साहित्य से मिलान किया जावे तो पता चलेगा कि इस्लाम को सत्यार्थप्रकाश ने कितना गहरा प्रभावित किया है। सत्यार्थप्रकाश के रंग में रंगे इस्लाम को आज के आर्यसमाजी वक्ता भी न जानते हैं, न जानने का प्रयास करते हैं और न इस आन्दोलन को आगे बढ़ाते हैं। अपनों को ही शास्त्रार्थ की चुनौती देते रहते हैं। दूसरों को खींचने का कोई प्रयास नहीं किया जाता।

इस्लाम शैतान के बिना भले-बुरे, पाप-पुण्य का विवेचन ही नहीं कर सकता। हाजी शैतान पर पत्थर मारने का कर्मकाण्ड किये बिना हाजी बन ही नहीं सकते, परन्तु सत्यार्थप्रकाश ने इस्लाम का शैतान से बहुत कुछ पिण्ड छुड़वा दिया है। सर सैय्यद अहमद ने एक कहानी लिखी है। सपने में एक कट्टरपंथी मौलवी को शैतान दिख गया। उसने एक हाथ से कसकर शैतान की दाढ़ी पकड़ ली और दूसरे हाथ से उसको थप्पड़ मारकर उसकी गाल लाल कर दी। मुल्ला की नींद खुल गई देखा कि वह लाल-लाल गाल उसका अपना था और उसके हाथ में उसी की दाढ़ी थी।

अब पता चला गया कि शैतान का कोई बाहरी अस्तित्व नहीं। पाप करवाने वाला, बहकाने वाला कोई बाहरी शैतान नहीं। मनुष्य कर्म करने में स्वतन्त्र है। इस्लाम की यह मान्यता सत्यार्थप्रकाश का प्रभाव नहीं तो क्या है?

एक बड़े मौलाना ने 'अकायदुल इस्लाम' नाम की

अपनी पुस्तक में यह स्वीकार किया है कि अल्लाह निराकार है। सकल जगत् उसके सामने एक कण तुल्य है। वह अल्लाह न तो धरा पर रहता है न वह आसमान में रहता है। उसका प्रकाश सर्वत्र है। न पूर्व में है और न पश्चिम में। ईश्वर का वेदोक्त स्वरूप आधुनिक इस्लाम को जंच गया है, भा गया है। एक समय था जब महाशय राजपाल जी का हत्यारा इल्मुद्दीन फाँसी की कोठरी से आसमान पर हजरत मुहम्मद के पास बहिश्त में जाकर मिला, फिर चुपचाप अपनी कोठरी में आ गया। मिर्ज़ा कादियानी का निकाह अल्लाह ने आसमान पर पढ़वा दिया था। अब आसमान ही नहीं रहे। फ़रिश्ते भी न रहे। क्यों जी यह इस्लाम का वैदिक रंग है या नहीं? अब इसे वैदिक रंग कहें तो अपने को समाजी बताने वाले ही बिदक जाते हैं। स्मरण रखो, पं. चमूपति जी की यह पंक्तियाँ ऋषि की दिग्विजय की घोषणा करती हैं-

जुग बीत गया दीन की शमशीर जनी का।
है वक्त दयानन्द शजाअत के धनी का।।

पं. लेखराम जी की गहन खोज- एक भाई ने किसी का लम्बा-चौड़ा लेख लिखकर पूछा है कि ऋषि जीवन में पं. लेखराम जी ने किसके आधार पर कलकत्ता की सभा पर लिखा है। प्रश्नकर्त्ता पं. लेखराम जी के ग्रन्थ को ही पढ़ लेता तो मुझसे कुछ पूछना न पड़ता। निश्चय ही पं. लेखराम ने ला. साईंदास की पोथी पढ़कर कुछ नहीं लिखा। आपने इस विषय में बहुत कुछ पढ़कर लिखा। पं. लेखराम के ग्रन्थ को एक बार देखकर उनके सब स्रोत पढ़कर हम दंग हैं। आर्य दर्पण में ऋषि के जीवनकाल में उस सभा का वृत्तान्त छप गया था। हमने भी आर्य दर्पण का वह अंक बारम्बार देखा है। लाला साईंदास से बहुत पहले आर्यसमाज पौराणिकों का उत्तर दे चुका था। उत्तर छप चुका था। ला. साईंदास किस-किस विषय के विद्वान् थे, यह बताने की कोई आवश्यकता नहीं। भाई परमानन्द जी, स्वामी श्रद्धानन्द जी और पं. युधिष्ठिर मीमांसक जी का कथन व लेख ही हमारे लिये प्रामाणिक है। किसी ने ला. साईंदास के पाण्डित्य पर कुछ लिखा हो तो वह सामने आना व लाना चाहिये। जो लोग विरोधियों के सामने खड़ा होने का कभी साहस नहीं कर पाये उन्हें आर्यसमाज में अपनी विद्वत्ता दिखाने का अवसर मिलते रहना चाहिये। आश्चर्य की बात तो यह है कि कोलकाता की सभा पर लिखते हुये पं. भानुदत्त जी (श्रद्धाराम के साथी) ने जब एक पत्र में डटकर खुलकर ऋषि जी के पक्ष में लिखा, तब उसने भी ला. साईंदास का नामोल्लेख न किया और न साईंदास जी ने तत्कालीन किसी भी पत्र में इस विषय में एक भी पंक्ति लिखी। इससे क्या निष्कर्ष निकला? लाला साईंदास जी किस-किस विषय के व कितने विषयों के विद्वान् थे, यह सप्रमाण बताना चाहिये। हवा में तीर चलाना तो सरल है।

'हृदय की तड़पन' और डॉ. अलिफ नाज़िम जी- हमें हमारे कृपालु डॉ. अलिफ नाज़िम जी ने श्रीमान् दुर्गासहाय जी सुरूर पर कुछ और ठोस साम्रगी भेजी है। अभी पं. लेखराम जी के बलिदान पर प्रकाशित उनकी दोनों काव्य पुस्तकें हमें प्राप्त नहीं हुईं। यह आर्य मात्र के लिये गौरव और आनन्द का विषय है कि अब उर्दू साहित्य का इतिहास लिखने वाले लेखकों ने दिल खोलकर 'सुरूर' जी को महर्षि दयानन्द का पक्का शिष्य और आर्यसमाजी तो लिखना आरम्भ कर दिया है। उन्हें नवयुग का सबसे बड़ा और उर्दू में देश-प्रेम तथा सुधार का विषय लाने वाला पहला महाकवि स्वीकार कर लिया है। उनके जीवन पर भी हमें और सामग्री मिलने लगी है।

जिस कार्य में हम लगभग आधी शताब्दी से लगे थे उसका कुछ सुखद परिणाम तो मिला। हमारे मान्य साहित्यकार बन्धुओं ने हमारी सेवाओं को मान्यता दी है। हमारी अगली पुस्तक सुरूर जी की देन और उनके व्यक्तित्व पर नया प्रकाश डालेगी। दु:ख का विषय है कि आर्यसमाज में कुछ ही व्यक्ति हिलने-डुलने लगे हैं। मेरठ, जहाँ सुरूर जी ने अन्तिम वर्ष बिताये- अभी सोया पड़ा है। उर्दू न जानते हुये भी श्री जितेन्द्र कुमार जी वकील बठिण्डा ने इस प्रयोजन की सिद्धि के लिये जो कार्य किया है व कर रहे हैं, वह आर्यसमाज के इतिहास में स्वर्ण अक्षरों में लिखा जायेगा।

ईश्वर ने पशु-पक्षी क्यों बनाये?- गंगानगर में एक आर्य भाई ने यह प्रश्न पूछ लिया कि ईश्वर ने पशु-पक्षी, गाय-बैल, सुअर क्यों बनाये? उन का प्रश्न सुनकर मुझे

प्रसन्नता हुई। आर्यजन कुछ सोच विचार करते तो हैं। उन्हें उत्तर दिया कि मनुष्य सृष्टि-रचना पर जब कुछ विचार करता है तो सृष्टि के सब पदार्थों, सब योनियों, पेड़-पौधों, नदी-नालों, तारों, पहाड़ों की रचना को अपने ही दृष्टिकोण से सोचता है। वह यह भूल जाता है कि सृष्टि केवल उसी के लिये नहीं, सृष्टि में असंख्य जीव हैं। परमात्मा ने सबके कल्याण व कर्मभोग के लिये सृष्टि रची है। क्या सर्प का, बिच्छु का, विष का कोई उपयोग नहीं। उस भाई को यह बात समझ में आ गई।

फिर एक और प्रश्न पूछ लिया कि जब सृष्टि रची गई तो पहला जन्म जिसे पशु आदि का मिला उसे किस कर्म के दण्डस्वरूप अधम योनि मिली?

उस भाई को बताया कि सृष्टि प्रवाह से अनादि है। जीव भी अनादि है अत: पहले जन्म की आप कल्पना ही नहीं कर सकते।

विज्ञान पूरे विश्व में प्रकृति को अनादि (Uncreated) मानता है। अवैदिक मत प्रकृति को उत्पन्न हुआ मानते रहे हैं। प्रकृति अनादि है तो जीवात्मा और परमात्मा भी फिर अनादि ही सिद्ध होते हैं।

आज हमारे देश का रोग यह है कि समाधि तथा मुक्ति की चर्चा करने वाले, मुक्ति के चाहने वाले तो बहुत हैं, परन्तु पुराने आर्य साहित्य की चर्चा चलाने वाले, पं. लेखराम, स्वामी दर्शनानन्द जी, उपाध्याय साहित्य का विचार करने के लिये कोई आगे नहीं आता। दर्शनाचार्य तो बहुत मिलते हैं, परन्तु वेद पढ़ाने व वेद का स्वाध्याय करने-करवाने वाले हमने तो कालीकट में ही देखे। इसके लिये श्रीमान् राजेश जी बधाई व सम्मान के पात्र हैं।

मिशनरी भावना वाले, प्रचार की ललक वाले कहाँ से निकलेंगे? ऋषि दयानन्द जी ने लोक कल्याण के लिये समाधि व ब्रह्मानन्द तक को छोड़कर संघर्षमय जीवन अपनाया। लोगों के बंन्धन काटने की चिन्ता की। आज तो जन्म लेने को मूर्खतापूर्ण बताया जा रहा है। एक नवीन योगी के ग्रन्थ में ऐसा ही लिखा है। स्वामी श्रद्धानन्द जी के लिये आप क्या कहेंगे? वे तो देश-धर्म की रक्षा, शुद्धि के लिये नरजन्म पाने की कामने करते थे।

किया जिसने संन्यास का रुतबा आला- वेद-भाष्य आदि के प्रकाशन की जटिल समस्या थी। अपना प्रेस न होने से कई विघ्न थे। ऋषि को प्रेस खोलना पड़ा। प्रेस स्थापित करके ऋषि पुकार उठे- ''हाँ! आज हम पतित हो गये। आज हम गृहस्थ हो गये।'' कितनी बड़ी बात ऋषि ने कह दी। उनका संन्यास का आदर्श कितना ऊँचा था। आज साधु नमक, मिर्च, मसाला, तेल, साबुन सब कुछ बेचते हैं। व्यापारी उद्योगपति अपने धन्धों के लिये घण्टों नहीं बोलते। बाबे चुप ही नहीं करते। मित्रो! धर्मप्रचार कौन करेगा? कैसे धर्म रक्षा होगी?

किया जिसने संन्यास का रुतबा आला।
दयानन्द स्वामी तेरा बोल-बाला।।

हिन्दू जीवन शैली और हिन्दू धर्म क्या है?- सर्वोच्च न्यायालय की एक टिप्पणी का उल्लेख करके श्री आडवानी आदि नेता यह कहते-सुनाते रहे हैं कि हिन्दू एक जीवन शैली है। यदि हिन्दू एक जीवन शैली है तो उसके मूलभूत आठ-दस नियम तो बताये जायें। क्या बाल विवाह हिन्दू जीवन शैली है? क्या मांसाहार या शाकाहार हिन्दू जीवन शैली है? क्या जातिवाद हिन्दू जीवन शैली है? क्या अस्पृश्यता हिन्दू जीवन शैली है? क्या जातिगत जन्माभिमान हिन्दू जीवन शैली है? क्या पाप क्षमा करवाने के लिये गंगा स्नान आदि कर्म हिन्दू जीवन शैली है अथवा हिन्दू धर्म है? क्या फलित ज्योतिष में विश्वास व मुहूर्त आदि का शुभ-अशुभ व दिशाशूल-यह हिन्दू जीवन शैली है अथवा हिन्दू धर्म है? टी.वी. चैनलों में तिलक लगाकर सजकर बैठे ज्योतिषी हर सङ्कट टालने तथा हर बिगड़ी बनाने का आश्वासन देते हैं। कश्मीर में उपद्रवी, देशद्रोही शान्त हुये क्या? चीन का वैर, जातिवाद, प्रान्तवाद और अलगाववाद कौनसा रोग दूर हुआ?

हिन्दू जीवनशैली क्या है? इसके मूलभूत सिद्धान्त सुनिश्चित हो जायें तो देश का बहुत भला होगा।

ऐसे ही हिन्दू धर्म की रट तो बहुत सुनाई देती है, परन्तु वह है क्या, यह भी कुछ स्पष्ट किये बिना हिन्दू की रक्षा नहीं होगी। ईश्वर एक है अथवा अनेक? ईश्वर जन्म लेता है क्या? वह निराकार है जैसा कबीर जी व ऋषि दयानन्द मानते हैं या वह साकार है। मूर्ति पूजा श्री कबीर, दादू जी, ऋषि दयानन्द को अमान्य है। The Art of

life in Bhagwadgita में आता है कि वेद, उपनिषद् काल में मूर्तिपूजा नहीं थी। हिन्दू धर्म का पाषाण पूज्य, मान्य है अथवा सर्वव्यापक निराकार की उपासना? योग विद्या हिन्दू धर्म है या घण्टे घड़ियाल बजाना? दाह कर्म हिन्दू धर्म है या समाधियाँ बनाना? जगत् मिथ्या है या जगत् की रचना व प्रलय एक सत्य है? ब्रह्म की एक सत्ता है या प्रकृति व जीवों की भी सत्ता है? कर्मों का फल काले कुत्ते के दर्शन से टल जाता है या भोगना ही पड़ता है? अभाव से भाव और भाव से अभाव क्या सम्भव है? हिन्दू धर्म के ये सिद्धान्त सुनिश्चित हुये बिना स्थिति चिन्ताजनक ही रहेगी। घर वापसी केवल राजनीतिक शोशा है या यह व्यवहार में लाने वाली मान्यता है-यह भी स्पष्ट होना चाहिये।

यह मुखरित क्यों नहीं करते?- महर्षि दयानन्द जी और स्वामी श्रद्धानन्द जी के प्रति नेताओं, विद्वानों व विचारकों की श्रद्धाञ्जलियाँ तो प्रचारित की जाती हैं, परन्तु पं. लेखराम आदि विषयक उद्गार कौन मुखरित करेगा? एक नामी मौलाना ने पं. लेखराम जी को कोहे वकार (गौरवगिरि) लिखा है। केवल श्री गुणग्राहक जी ने इसे प्रचारित किया है। शेष आर्यजगत् ने चुप्पी साध रखी है। ऐसे ही मौलाना रफ़ीक दिलावरी के His Holiness आदि ग्रन्थों, पं. भगवद्दत्त जी के उद्गार रक्तसाक्षी पं. लेखराम ग्रन्थ से लेकर उजागर करने से समाज का गौरव बढ़ेगा। यह करणीय कार्य है।

पं. लेखराम रचित ऋषि जीवन- आर्यसमाज नया बाँस प्रशंसा का पात्र है कि फिर ला. दीपचन्द जी ने इस ग्रन्थ का हिन्दी अनुवाद छपवाया। इसके निष्ठावान्, सुयोग्य अनुवादक का उत्साह भी वन्दनीय था, परन्तु वह फ़ारसी नहीं जानते थे। उन्होंने श्री ओ३म् प्रकाश जी कपड़े वालों, श्री शरर जी का या मेरा भी सहयोग न लिया, इस कारण ग्रन्थ में कई भंयकर भूलें या अशुद्धियाँ हो गईं। मुझे इनका पता कई वर्ष पश्चात् लगा फिर इसके लिये एक नया सम्पादक खोजा गया। आपने भी अपनी टिप्पणियों व शुद्धिकरण से और अशुद्धियाँ जोड़ दी। यथा 'देशभाषा' को हिन्दी बता दिया। यह गुजराती के लिये प्रयुक्त हुआ शब्द है। कई शुद्ध नाम अशुद्ध कर दिये गये। 'सबत' फारसी अरबी शब्द को सबूत करके ऋषि के पत्र-व्यवहार को भी गड़बड़युक्त कुछ का कुछ बना दिया गया।

अब समय रहते कोई समाज यदि श्री धर्मेन्द्र जी 'जिज्ञासु' से इस ग्रन्थ को ठीक करवाये तो वह लक्ष्मण जी वाले ग्रन्थ के प्रकाश में इसको सुधार सकते हैं। मैं उन्हें सब प्रकार का सहयोग दूँगा। इस कार्य में विलम्ब का भारी मूल्य चुकाना पड़ेगा। धर्मेन्द्र जी इस कार्य को करने में समर्थ हैं। रोना तो यही है कि पण्डित जी द्वारा लिखित ग्रन्थ के अनुवादक सम्पादक जी तो शुद्ध को अशुद्ध करते गये। क्या-क्या बतावें? अनजाने से यदि ऐसा किया गया तो भी चूक ही है।

आर्य साहित्य में मुद्रण दोष- एक बार मान्य कुशलदेव जी ने मुझे कहा था कि आर्यसमाज के पास आज कोई अनुभवी प्रूफ़ रीडर न होने से हमारे साहित्य में बहुत अशुद्धियाँ रह जाती हैं। सब लेखक मान्य डॉ. वेदपाल जी और विरजानन्द जी के सदृश प्रूफ़ पढ़ने में दक्ष नहीं हो सकते। मेरे ग्रन्थों में छपने के पश्चात् ही कई बार सन् सम्वत् आदि की अशुद्धि का पता चलता है। नवयुग की आहट में तो भूल पकड़ी ही न जा सकी। वहाँ पूना में ऋषि को हाथी पर बिठाया गया लिखा है। ऋषि हाथी पर बैठे ही नहीं थे। हमारे सुदक्ष कम्प्यूटकार तथा प्रूफ़ रीडर हों- इसका कोई उपाय करना चाहिये। गुरुकुल होशंगाबाद इधर ध्यान दे तो बहुत यश मिलेगा।

स्वामी विवेकानन्द साहित्य- स्वामी विवेकानन्द को परस्पर विरोधी विचार लिखने व देने में कतई संकोच नहीं था। उनके जीवन पर एक ग्रन्थ रामकृष्ण मिशन ने छपवाया। मैंने एक पुस्तकालय से लेकर पढ़ा। उसे उद्धृत करता रहा। एक कृपालु मेरे द्वारा उद्धृत विचार को किसी दूसरे स्थान की घटना बताते हैं। उनका धन्यवाद। मैं भी वह पुस्तक जो पढ़ी थी उसे खोजकर मिलान कर लूँगा। मुझे भूल सुधार करने में संकोच नहीं होता, जिन्हें फिसलने की आदत है उनका सुधार कीजिये।

मनुष्यों को चाहिये कि अपने पुरुषार्थ से सुवर्ण आदि धन को इकट्ठा कर घोड़े आदि उत्तम पशुओं को रक्खें क्योंकि जब तक इस सामग्री को नहीं रखते तब तक गृहाश्रमरूपी यज्ञ परिपूर्ण नहीं कर सकते इसलिये सदा पुरुषार्थ से गृहाश्रम की उन्नति करते रहें।

- महर्षि दयानन्द, यजुर्वेद, भावार्थ ८.६३

ऐतिहासिक कलम....

वेद ईश्वरीय ज्ञान क्यों?

आचार्य उदयवीर शास्त्री

पिछले अंक का शेष भाग....

जैसा स्वाभाविक ज्ञान मनुष्य में है, वैसा प्रत्येक प्राणी में रहता है, पर मनुष्य देह की बनावट में ऐसी विशेषताएँ हैं और इस देह में कुछ ऐसी ग्रन्थियाँ और अवयव हैं कि उनके अपने उचित कार्य करते रहने पर ज्ञान-वृद्धि में सहयोग प्राप्त होता है, पर यह उसी अवस्था में संभव है, जब बाह्य उपदेश आदि का उचित सहयोग हो। यह उपदेश की परम्परा जब से मनुष्य ने सर्वादिकाल में आंखें खोली हैं तभी से चली आ रही है। वर्त्तमान काल में माता, पिता, गुरु आदि उपदेश द्वारा बालक को शिक्षित करते हैं, बालक के माता, पिता आदि ने अपने बड़ों से उपदेश प्राप्त किया, उन्होंने अपने पूर्वजों से। इस प्रकार यह उपदेश-परम्परा आदि सृष्टि तक पहुँचती है। प्रश्न यह है कि जो सर्वप्रथम मानव हुए, उनको ऐसा उपदेश किसने दिया? माता, पिता आदि उनके पूर्वज कोई न थे। इस बात को निश्चित रूप से जाना जा चुका है कि जीवात्मा को अतिरिक्त ज्ञान-ग्रहण का सामर्थ्य होने पर भी बिना अन्य सहयोग के स्वत: ज्ञान-वृद्धि में वह असमर्थ रहता है। एक सशक्त मनुष्य को गहरे पानी में छोड़ने पर वह तत्काल तैरने नहीं लगेगा, डूब ही जायेगा, पर प्राय: समस्त पशु तथा अनेक पक्षी स्वभावत: जल में छोड़े जाने पर तैर जाते हैं, उन्हें यह सिखाया किसी ने नहीं। मनुष्य एक ऐसा अपाहिज प्राणी है, जो बिना सिखाये ऐसे कार्यों में अक्षम रहता है, सिखाये जाने पर उलटा, सीधा, तिरछा, खड़ा सब तरह तैर सकता है, तथा जल पर तैरने, अन्दर डुबकी लगाने एवं आकाश में उड़ने आदि के अनेक साधनों का निर्माण कर सकता है, जबकि अन्य प्राणियों में ऐसी कोई संभावना नहीं। मनुष्य की यह विशेषता इसकी शरीर-रचना पर आधारित है, जैसा कि अभी हम पहले कह चुके हैं। आदि काल में कोई लौकिक शिक्षक संभव न होने से मानव की उक्त स्थिति इस बात को प्रमाणित करती है कि उसे किसी अलौकिक पद्धति से वह ज्ञान प्राप्त होता है, जिस पर उसके आगे के समस्त व्यवहार आधारित हैं। यही एक अवसर है, जब मनुष्य को उस रीति पर ज्ञान का उपदेश दिया जाता है, जो अनन्तर काल में साधारण रूप से अनपेक्षित है। जिस रीति पर आदि-मानव को ज्ञान वृद्धि का साधन प्राप्त हुआ, उसी का नाम साक्षात्कृतधर्मा व्यक्तियों ने ईश्वर-प्रेरणा से ज्ञान-प्राप्ति बताया है, उस ज्ञान-साधन का मानव सदा लाभ उठा सकता है। वही साधन वेद है, जो सृष्टि के आदि समय से लेकर आज तक मानव द्वारा सुरक्षित है।

शंका-मेरा विचार है कि यदि मनुष्य या कोई विद्वान् मनुष्य की परिभाषा कर ले और ज्ञान की भी तो उसका फल यही हो सकता है कि वेद मनुष्यों के विचारों की पुस्तक है न कि परमात्मा का दिया हुआ ज्ञान है। मनुष्य को वेदों के काल में अपनी आवश्यकता के अनुसार जो कुछ विचार उत्पन्न हुए, वह लिख दिये या बना लिये। मनुष्य को जिससे कोई लाभ होता है, वह उसकी पूजा करता है, परन्तु ईश्वर से तो न कोई लाभ होता है और न हो सकता है, वह तो मान लिया गया है कि कोई ऐसी वस्तु अवश्य होनी चाहिये। ऐसा मानने में कोई बुद्धि का काम नहीं है।

समाधान-मनुष्य और ज्ञान के विषय में अभी ऊपर थोड़ा उपयुक्त विचार प्रस्तुत किया गया है। उतना विचार इस समय हमारी विवेचना के लिये पर्याप्त है और आपकी उसमें सहमति है। मनुष्य और उसके ज्ञान की स्थिति ऐसी है कि उसमें अन्य सहयोग के बिना किसी तरह के परिवर्तन या वृद्धि आदि की संभावना नहीं देखी जाती। ऐसी अवस्था में आपने जो उसका परिणाम निकाला कि वेद मनुष्यों के विचारों की पुस्तक है, यह वास्तविकता से सर्वथा विपरीत है। मनुष्य स्वत: बिना किसी अन्य सहयोग के अपने विचारों को इतना महान् एवं विस्तृत जानकारी तक पहुँचा सकता है, यही बात तो समझनी है। हमारे सामने जो हालात हैं, उन पर गहरा विचार करने पर हम इसी नतीजे पर पहुँचते हैं कि मानव अन्य सहयोग के बिना स्वत: उस

स्थिति को प्राप्त नहीं कर पाता। ऐसा मालूम होता है कि जब मानव अपने व अन्य सहयोगियों के महान् प्रयत्न के फलस्वरूप उस अवस्था में पहुँचता है, जब वह ऐसी समस्याओं पर विचार कर सके, तब संभवत: वह अपनी उन पहली अवस्थाओं को भुला देता है, जब उसने तोतली अटपटी ध्वनियों के साथ एक विशिष्ट सामाजिक वातावरण में रहकर बोलना और अपना सुकोमल कर दूसरे के हाथ में देकर कलम पकड़ना सीखा था। वह स्थिति केवल स्वाभाविक ज्ञान द्वारा प्राप्त नहीं होती। यदि कोई विचारशील आँखें खोलकर मानव-समाज की या अपनी पिछली यात्रा का विवेकपूर्ण सिंहावलोकन करे तो वह इस नतीजे पर पहुँच सकता है कि जहाँ से मानव ने अपनी जीवन-यात्रा प्रारम्भ की वह अवस्था कैसी रही होगी, जीवन का प्रारम्भ किन दशाओं में संभव रहा होगा। इससे अच्छा और अधिक निर्दोष कोई अन्य मार्ग दिखाई नहीं देता कि आदि मानव को अलौकिक शक्ति द्वारा वह ज्ञान-साधन अवश्य प्राप्त हुआ, जिसके आधार पर वह अपने जीवन व्यवहार को चलाने में समर्थ हो सका।

यह बात कह देने में बड़ी सरल है कि वेद-काल में अपनी आवश्यकता के अनुसार जो विचार मनुष्य को उत्पन्न हुए, वह उसने लिख लिये या बना लिये, उन्हीं का नाम वेद है। वेद जिस रूप में हमारे सामने हैं और उनमें जो कुछ है, वह सब इतना असाधारण है कि उस अवस्था तक पहुँचने के लिये उन मनुष्यों ने विस्तृत जगत् का कितना सूक्ष्म ज्ञान प्राप्त कर लिया होगा, इन्द्रियों के सर्वथा अगोचर विषयों को भी कितनी गहराई व सच्चाई के साथ जान लिया होगा, आज हम इसकी केवल कल्पना कर सकते हैं, पर मूल प्रश्न यही है कि यदि कुछ सच्चाई इसी विचार में है तो यह समस्या मुँह फाड़कर सामने आती है कि वह मानव जिसके विचार वेद हैं-जानकारी की इतनी ऊँची अवस्था तक कैसे पहुँचा होगा जबकि मानव स्वभावत: इतना अपाहिज है कि वह बिना अन्य सहयोग के स्वत: कुछ नहीं सीख सकता।

इसके समाधान के लिये आधुनिक काल में एक ही मार्ग सुझाया गया है, जो भारतीय परम्परा की इस विषय की प्रक्रियाओं की उपेक्षा करता है। वह मार्ग है विकासवाद। आदि सर्ग की स्थिति को हममें से किसी ने देखा नहीं, जिन्होंने देखा, वे आज हैं नहीं, हमारे उनके सम्पर्क का कोई आधार भी नहीं। उसको किसी रूप में जानने या अन्दाज करने के लिये हमारे सामने यह प्राकृतिक जगद्रूप पुस्तक है। इसको यदि कोई पढ़ सके तो संभव है सच्चाई के समीप पहुँचने का मार्ग मिल जाये। प्राचीन काल में साक्षात्कृतधर्मा ऋषियों ने इसको पढ़ा, उन्होंने जो परिणाम इसके प्रस्तुत किये, वे भारतीय संस्कृति व वैदिक साहित्य के रूप में किसी सीमा तक सुरक्षित हैं। आधुनिक काल में कुछ समय से इसके अध्ययन का प्रशंसनीय प्रयास हो रहा है। अनेक जानकारियाँ सामने आई हैं। यह अपने ढंग का एक अनुपम प्रयास है, इसका अन्तिम परिणाम क्या निकलेगा, इसकी अभी प्रतीक्षा करनी होगी, संभव है कुछ अगली पीढ़ियाँ उसे देख समझ सकें। इसी दिशा में प्रकृति की परतों को उलटकर मानव समाज की यात्रा का जो रूप प्रस्तुत किया गया है, वही विकासवाद है, पर मूलत: यह एक अपसिद्धान्त है, ऐसी संभावना अनुचित न होगी। कारण यह है कि संसार की ज्ञात परिस्थिति के साथ यह मेल नहीं खाता। मूल प्रश्न यही है कि मानव का स्वत: विकास कैसे होता है? इसका उदाहरण संसार में कोई नहीं मिलता, जबकि इसके विपरीत सारा संसार सामने उदाहरण है। इसलिये संसार का कोई ज्ञात या अज्ञात इतिहास कोई इस कल्पना की पुष्टि नहीं करता। जिन परतों को खोलकर उनके तथाकथित अध्ययन से इस कल्पना का उद्भावन किया गया है, वे परतें गहरे सन्देहों से भरी हैं।

मानव मस्तिष्क तथा मानव-देह की अन्य अनेक ग्रन्थियों की ऐसी बनावट है, जिससे ज्ञान वृद्धि के अन्यतम साधन के रूप में विशिष्ट सहयोग प्राप्त होता है, पर इनका बनाना मानव के हाथ में नहीं है। अपनी इच्छानुसार पूर्ण स्वस्थ मस्तिष्कयुक्त एवं सक्रिय ग्रन्थियों से युक्त मानव-देह का निर्माण मानव द्वारा होना संभव नहीं अन्यथा प्रत्येक व्यक्ति उन्नत मस्तिष्क बालक को पैदा कर सकता, कौन ऐसा पिता हो सकता है, जो अपने पुत्र का सर्वश्रेष्ठ होना न चाहे। यह कितना आश्चर्य है कि इतना अक्षम होता हुआ भी मानव यह समझता है कि उसने स्वत: सब कुछ कर

लिया है, उसे कभी किसी से कुछ सीखने की अपेक्षा नहीं हुई।

मनुष्य के लाभ का प्रश्न भी विचारणीय है। लाभालाभ आदि सापेक्षिक भाव हैं, इनकी कोई नियत सीमा नहीं। पर समाज की उच्च स्थिति में मानव के लिये यह विचार महत्त्व रखता है, इसमें अभ्युदय की श्रेणियाँ छिपी रहती है। सवाल यह है कि मनुष्य के लाभ में ईश्वर का कुछ सहयोग है या नहीं? मनुष्य अपने विचार तथा ऐश्वर्यों के लिये प्रयत्न करने पर जिन उपलब्धियों में सफल होता है, उसे लाभ कहता है, यह ठीक है, पर इन सब प्रकार की ऐहिक उपलब्धियों का जो मूल आधार है, उस ईश्वरीय रचना की ओर से मानव अपनी आँखें मूंद लेता है। आप मानते हैं, संसार या संसार का क्रम अनादि है, संसार बनता-बिगड़ता रहता है, इसे प्रत्येक विचारशील वैज्ञानिक समझता है, इसका बनाना या बिगाड़ना मनुष्य की शक्ति से बाहर है, जो शक्ति इसे बनाती या बिगाड़ती है, उसी का नाम ईश्वर है। ईश्वर वैसे ही मान नहीं लिया गया है, उसका अस्तित्व आवश्यक है, प्रामाणिक है, अनुपेक्षणीय है। मनुष्य के सब प्रकार के ऐहिक-पारलौकिक लाभ जगद्रचना पर अवलम्बित हैं। मानव देह में बैठा देह का अधिष्ठाता (आत्मा) जो इस तर्कणा की उद्भावना किया करता है, वह सृष्टि रचना के अनन्तर ही इस अवस्था में आ पाता है। संसार की यह रचना ईश्वराधीन है, इससे मनुष्य सब प्रकार के लाभ प्राप्त करता है। तब क्या यह नहीं माना जा सकता कि ईश्वर द्वारा ही मनुष्य को यह लाभ हुआ है। ठीक मस्तिष्क वाले मनुष्य ने इस सच्चाई को समझा है, इसीलिये वह आपके शब्दों में ईश्वर की पूजा करता है, करता आया है और आगे सदा करता रहेगा।

शङ्का-विचार यह है कि मनुष्य अनादि है, उसकी बुद्धि या ज्ञान स्वाभाविक है, क्योंकि मनुष्य न हो तो सृष्टि का विचार कौन कर सकता है और बगैर मनुष्य के सृष्टि ही नहीं, क्योंकि सृष्टि अनादि है या सृष्टिक्रम अनादि है तो ईश्वर का सृष्टि के बनाने या न बनाने में कोई अधिकार ही नहीं तो मनुष्य जो सृष्टि का अंग है, जैसा और जहाँ तक उसका मस्तिष्क जिस काल में ले जाता है, वही विचार बना लेता है, इस कारण वेद ईश्वरकृत नहीं हो सकते।

समाधान-मनुष्य की परिभाषा आपकी अनुमति से जो पूर्व निर्दिष्ट की गई है, उसके अनुसार उस रूप में मनुष्य को अनादि नहीं कहना चाहिये, जब एक विशेष प्रकार के देह के साथ शक्ति (आत्मा) का सम्बन्ध होता है, उसे मनुष्य कहा जाता है। इस मनुष्य परिभाषा में देह भी आ जाता है, पर कोई देह अनादि संभव नहीं, देह को बनते-बिगड़ते हम अपने सामने देखते हैं, इसलिये मनुष्य को अनादि न कहकर इसके क्रम को अनादि कहना चाहिये। मनुष्य का क्रम अर्थात् सिलसिला अनादि है। मनुष्य अनादि काल से इसी प्रकार होता आया है, यही अभिप्राय आपका मनुष्य को अनादि कहने का हो सकता है, इसमें शक्ति (आत्मा) अनादि है, देह बनते-बिगड़ते रहते हैं। ज्ञान के स्वाभाविक होने की जो बात है, उसका विवेचन किया जा चुका है।

'मनुष्य न हो तो सृष्टि का विचार कौन कर सकता है, बगैर मनुष्य के सृष्टि ही नहीं।' यह कहना ठीक नहीं है। सभी वैज्ञानिक प्राचीन और नवीन इस बात को जानते व मानते हैं कि मनुष्य के प्रादुर्भाव से बहुत पूर्व सृष्टि की पूर्ण रचना हो चुकी होती है। सृष्टि रचना के पर्याप्त अनन्तर मानव का प्रादुर्भाव होता है तब यह कहना कहाँ तक ठीक है कि बगैर मनुष्य के सृष्टि ही नहीं। इसके विपरीत कहना यह चाहिये कि सृष्टि के बिना मानव का प्रादुर्भाव संभव नहीं। सृष्टि का विचार पीछे की बात है, जब वह अपने अस्तित्व में आ चुकी है तो उसका विचार होना या न होना कोई महत्त्व नहीं रखता। सृष्टि क्रम को अनादि मानने का तात्पर्य यही है कि सृष्टि अनादि काल से बनती-बिगड़ती चली आ रही है, जब इसका बनना-बिगड़ना माना जाता है, तब उसके बनाने-बिगाड़ने वाले से इंकार नहीं किया जा सकता। निश्चित है कि मनुष्य इसके लिये सर्वथा असमर्थ है, साथ ही मनुष्य के प्रादुर्भाव से बहुत पूर्व सृष्टि रचना हो चुकी होती है। इसकी जो रचना करता है, वही ईश्वर है। फिर सृष्टि के बनाने में ईश्वर का कोई अधिकार नहीं, यह कैसे कहा जा सकता है।

मनुष्य सृष्टि का अंग है, यह कथन इस बात को स्पष्ट करता है कि सृष्टि रचना पर मनुष्य का कोई अधिकार नहीं है। मनुष्य का एक भाग 'देह' सृष्टि रचना हो जाने पर

अस्तित्व में आ सकता है, अन्यथा नहीं। आत्मा जो शक्ति देह के अन्दर बैठकर समस्त दैहिक क्रियाकलाप को प्रेरित करती है, उसका सब लौकिक व्यवहार इस स्थूल देह पर आश्रित रहता है। देह के सम्पूर्ण अंग-प्रत्यंग आत्मा सम्बन्धी किसी भी व्यवहार के लिये उपयोगी होते हैं, देह के उन अंग-प्रत्यंगों की क्रिया एवं प्रतिक्रिया के विषय में उसी देह के अधिष्ठाता आत्मा को कुछ भी जानकारी नहीं होती। परन्तु वे सब क्रिया एवं प्रतिक्रिया किसी नियम, किसी व्यवस्था के अनुसार अपना कार्य बराबर किया करते हैं। यदि गंभीरता से देह की इस आन्तरिक प्रक्रिया पर विचार किया जाय, तो इस परिणाम पर पहुँचने में कोई बाधा न होगी कि देह के अधिष्ठाता आत्मा का इन प्रक्रियाओं पर न नियन्त्रण है और न उनकी इसे जानकारी है। उस प्रक्रिया में यदि कभी कोई व्यतिक्रम होने लगता है तो अधिष्ठाता आत्मा को अपनी बेचैनी और मजबूरी का अहसास अच्छी तरह हो जाता है। स्पष्ट है कि देह की इस आन्तर व्यवस्था का व्यवस्थापक अधिष्ठाता आत्मा से अन्य कोई तत्त्व होना चाहिये। यह स्थिति हमारे सम्मुख इस रहस्य को खोल देती है कि मनुष्य का मस्तिष्क जिस काल में उसे जहाँ ले जाता है, वही विचार वह बना लेता है, इस कथन में कितना बल है।

इस बात को पहले स्पष्ट कर दिया गया है कि मनुष्य चाहे जिस काल में हो अन्य सहयोग के बिना ज्ञानवृद्धि में सर्वथा अक्षम रहता है। इसलिये ऐसे समय में जब उसके लिये लौकिक उपदेष्टाओं की उपलब्धि असंभव है, अलौकिक उपदेष्टा के द्वारा उसके लिये ज्ञानवृद्धि के साधनों का उपलब्ध कराना अत्यन्त आवश्यक एवं स्वाभाविक है। इसमें गड़बड़ होना मनुष्य की सांसारिक मात्रा को **उत्पथ** बना देना है। फलतः सर्गादिकाल में ईश्वर के द्वारा मनुष्य के लिये सन्मार्ग प्रदर्शित करने का विचार अबुद्धिमत्तापूर्ण नहीं है। ऐसे ही आधारों पर कहा गया है कि वेद ईश्वरीय ज्ञान है, यह उसी की देन है।

ऐसे विषय इन्द्रियागोचर हैं। सप्रमाण कल्पनाओं एवं ऊहाओं के आधार पर ऐसे विषयों पर विवेचना प्रस्तुत की जा सकती है। भावुकता को छोड़कर केवल सत्यान्वेषण की भावना से इन विषयों पर मनन किया जाय, तो सच्चाई तक पहुँचने की संभावना रहती है। प्रश्नकर्त्ता विद्वान् महोदय से मेरा हार्दिक निवेदन है कि वे स्वयं इन विषयों पर संलग्नता से मनन करेंगे तो उन्हें अवश्य सत्य का प्रकाश मिलेगा।

लेखकों से निवेदन

परोपकारी में उन लेखों, कविताओं, रचनाओं को स्थान दिया जाता है, जो **मौलिक व अप्रकाशित** हों। अतः सभी लेखकों से निवेदन है कि वे अपनी उन्हीं रचनाओं को भेजें जो मौलिक व अप्रकाशित हों।

अनेक लेखक मौलिक व अप्रकाशित रचना तो भेजते हैं, किन्तु उसे एक साथ **अनेक पत्रिकाओं को भेजते हैं।** अतः लेखकों से यह भी निवेदन है कि वे कृपया परोपकारी को वे ही रचना भेजें, जो अन्य पत्रिकाओं के लिए न भेजी हों। परोपकारी में छपने के बाद यदि अन्यत्र भेजना चाहें तो यह उनकी इच्छा पर निर्भर करता है।

कृपया लेख के अन्त में अपना **पूरा पता व चल-दूरभाष संख्या अवश्य लिखें।** लेख के स्वीकृत-अस्वीकृत होने की सूचना चल-दूरभाष पर संक्षिप्त संदेश द्वारा प्रेषित कर दी जायेगी। **परोपकारिणी सभा द्वारा रचनाओं के लिए किसी प्रकार का भुगतान नहीं किया जाता है।**

रचयिता अपनी रचना की एक प्रति कृपया अपने पास रखकर भेजें, क्योंकि **अस्वीकृत रचनायें डाक द्वारा लौटाई नहीं जाती हैं।** स्वीकृत रचना परोपकारी के किसी आगामी अङ्क में देखी जा सकती है। रचना के प्रकाशन में छः माह या अधिक समय भी लग सकता है, अतः कृपया तब तक रचना को अन्यत्र न भेजें। **-संपादक**

सब व्यवहार करने वालों को चाहिये कि जो मनुष्य जिस काम में चतुर हो उसको उसी काम में प्रवृत्त करें।

-महर्षि दयानन्द, यजुर्वेद, भावार्थ ८.२०

परोपकारी के सुधी पाठकों के लिए आवश्यक सूचना

परोपकारी शुल्क भेजते समय नये या पुराने ग्राहक के उल्लेख के साथ-साथ ग्राहक संख्या अवश्य लिखें, अन्यथा शुल्क जमा करने में कठिनाई आती है। फलस्वरूप पाठकों के पास पत्रिका नहीं पहुँच पाती है। ऐसे ही अपना नाम हटवाते व जुड़वाते समय दूरभाष संख्या सहित अपना पूरा विवरण लिखकर भेजें। ई.एम.ओ. के द्वारा शुल्क भेजने वाले ग्राहक भी सन्देश के साथ अपनी ग्राहक संख्या सहित पूरा विवरण भेजें। **परोपकारी पत्रिका कार्यालय से निरन्तर भेजी जाती है, फिर भी जिन लोगों के पास पत्रिका का कोई अंक प्राप्त ना हुआ हो तो कृपया पत्र या दूरभाष द्वारा हमें सूचित करें, ताकि हम वह अंक पुनः भेज सकें, साथ ही अपने डाकघर में इसकी जाँच आदि भी करें।**

धनराशि भेजने हेतु सूचना

परोपकारिणी सभा महर्षि दयानन्द सरस्वती द्वारा स्थापित सभा है एवं उनके कार्यों को आगे बढ़ाने के लिय कृत-संकल्प है। सभा द्वारा ऋषि के स्वनानुरूप गुरुकुल, संन्यास एवं वानप्रस्थाश्रम, ध्यान शिविर, वैदिक साहित्य का प्रकाशन, देश में प्रचार, परोपकारी पत्रिका के माध्यम से जन-जागरण, भव्य अतिथिशाला, भोजनशाला आदि अनेक प्रकल्पों का संचालन हो रहा है। ये सभी कार्य आर्यजनों के सात्विक दान से ही होते हैं। अतः दानी महानुभावों से निवेदन है कि वेद, ईश्वर, दयानन्द के इस कार्य में अपना सहयोग अवश्य प्रदान करें।

चैक, ड्राफ्ट, धनादेश (मनीआर्डर) द्वारा राशि भेजने वाले उन पर '**परोपकारिणी सभा**' अवश्य लिख दें। दानी महानुभाव ऑनलाइन भी राशि जमा करवा सकते हैं। भारतीय स्टेट बैंक में एक सहस्त्र तक की राशि जमा कराने वाले **२५ रु. बैंक सेवा शुल्क के रूप में अतिरिक्त** जमा करवाने की कृपा करें। कृपया, राशि निम्नांकित बैंकों में ऑनलाइन भिजवाकर, जमा कराई गई स्लिप के साथ उद्देश्य लिखकर सभा कार्यालय को सूचित करवाने का कष्ट करें।

खाताधारक का नाम - परोपकारिणी सभा, अजमेर (PAROPKARINI SABHA AJMER)

१. बैंक बचत खाता (Savings) संख्या-091104000057530 बैंक का नाम-आई.डी.बी.आई. बैंक, पावर हाउस के सामने, जयपुर रोड, अजमेर।
IFSC - IBKL0000091

२. बैंक बचत खाता (Savings) संख्या - 10158172715 बैंक का नाम - भारतीय स्टेट बैंक, डिग्गी बाजार, अजमेर।
IFSC - SBIN0007959

जैसे वेद के वेत्ता विद्वान् लोग वेदानुकूल मार्ग से परमेश्वर को जानकर उत्तम ज्ञान से उसका सेवन करते हैं, वैसे ही जगदीश्वर सब को उपासनीय अर्थात् सेवन करने के योग्य है, वैसे ज्ञान के विना ईश्वर की उपासना कभी नहीं हो सकती क्योंकि विज्ञान ही उसकी अवधि है।

- महर्षि दयानन्द, यजुर्वेद, भावार्थ ८.४१

वैचारिक क्रान्ति के लिए सत्यार्थ प्रकाश पढ़ें।

प्राणोपासना – ५

तपेन्द्र

मनो ह वाव यजमान इष्टफलमेवोदानः स एनं यजमानमहरहर्ब्रह्म गमयति।।

प्रश्नोपनिषद्- ४.४

यह उदान प्राण मन रूपी यजमान को नित्यप्रति ब्रह्म से सम्बन्ध करा देता है। उदान प्राण स्थिर होने पर आत्मदर्शन होता है।

स यथा शकुनिः सूत्रेण प्रबद्धो दिशं दिशं पतित्वान्यत्रायतनमलब्ध्वा बन्धनमेवोपश्रयत एवमेव खलु सोम्य! तन्मनो दिशं दिशं पतित्वान्यत्रायतनमलब्ध्वा प्राणमेवोपश्रयते प्राणबन्धन हि सोम्य! मन इति।

छान्दोग्य उपनिषद् ६.८.२ के अनुसार जैसे डोर से बँधा हुआ पक्षी दिशा-दिशा में उड़-उड़कर जाता है, कहीं ठिकाना न पाकर जहाँ बँधा होता है, वहीं आकर आश्रय पाता है, हे सोम्य! इसी प्रकार मन दिशा-दिशा में उड़कर जाता है, कहीं ठिकाना न पाकर प्राण का ही सहारा लेता है। प्राण मन का बन्धन-अधिष्ठान है। इस प्रकार प्राण को स्थिर करके मन को एकाग्र किया जा सकता है तथा मन की वृत्तियों को एकाग्र करके, निरुद्ध करके समापत्ति-समाधि की स्थिति प्राप्त की जा सकती है। इसलिए वैराग्य के साथ-साथ अभ्यास भी आवश्यक है तथा प्राणायाम का अभ्यास मन की एकाग्रता के लिए परम आवश्यक है।

प्राणायामादशुद्धिक्षये ज्ञानदीप्तिराविवेकख्यातेः

योग के इस सूत्र की व्याख्या करते हुए महर्षि लिखते हैं, ''जब मनुष्य प्राणायाम करता है तब प्रतिक्षण उत्तरोत्तर काल में अशुद्धि का नाश और ज्ञान का प्रकाश होता जाता है। जब तक मुक्ति न हो तब तक उसके आत्मा का ज्ञान बढ़ता जाता है।'' इस प्रकार अशुद्धि का नाश तथा ज्ञान का प्रकाश प्रतिक्षण होता है, उत्तरोत्तर काल में होता है तथा मुक्ति पर्यन्त बढ़ता चला जाता है।

दह्यन्ते ध्मायमानानां धातूनां हि यथा मलाः। तथेन्द्रियाणां दह्यन्ते दोषाः प्राणस्य निग्रहात्।।

मनु ६.७१

इसकी व्याख्या करते हुए महर्षि लिखते हैं-''जैसे अग्नि में तपाने से सुवर्णादि धातुओं का मल नष्ट होकर शुद्ध होते हैं वैसे प्राणायाम करके मन आदि इन्द्रियों के दोष क्षीण होकर निर्मल हो जाते हैं।'' क्लिष्ट वृत्तियाँ ही मन व इन्द्रियों के दोष हैं। मन, जो सांसारिक विषयों में स्वयं या इन्द्रियों के माध्यम से भागता है तथा क्लिष्ट कर्मों द्वारा संस्कार बनाता रहता है, उन संस्कारों से पुनः क्लिष्ट कर्म होते रहते हैं तथा इस प्रकार इस चक्र में फँसकर विवेक से दूर होता चला जाता है, वैराग्य से दूर होकर संसार में फँसता चला जाता है, काम क्रोध, लोभ, मोह आदि में फँसकर आत्म दर्शन की पात्रता खोता रहता है तथा इसी कारण क्षिप्त, मूढ़ व विक्षिप्त स्थितियों को ही प्राप्त कर पाता है, एकाग्र व निरुद्ध अवस्था तक पहुंच ही नहीं पाता है, फलतः जन्म-मरण के चक्र में फँसा रहता है। इस चक्र को तोड़ने का, मन व इन्द्रियों के दोषों को क्षीण करने का उपाय प्राणायाम है। प्राणायाम से मन की शुद्धि होगी। स्वामी सत्यबोध जी महाराज के शब्दों में, ''मन की शुद्धि इसी में है कि चित्त में संसार के बाह्य पदार्थों का उपराग बिलकुल नहीं पड़े अर्थात् मन में इन्द्रियों के विषयों, सांसारिक वासनाओं और कामनाओं मूलक वृत्तियों का नितान्त अभाव रहे।''

प्राणायाम की क्रियाओं का अभ्यास करने से पूर्व कुछ महत्त्वपूर्ण तथ्यों को जानने के क्रम में पिछले लेख प्राणोपासना-४ में आसन के सम्बन्ध में विचार किया गया था कि अभ्यासी को स्थिर व सुखपूर्वक आसन के लिए केवल शरीर तक ही सीमित नहीं रहना, बल्कि प्रयत्न शैथिल्य का अभ्यास करके अनन्त आकाश में मन को टिकाकर, एकाग्र करके अनन्त समापत्ति करनी है, जिससे अभ्यासी का शरीर के साथ-साथ मन भी समाहित होगा, एकाग्र होगा, स्थिर होगा।

आसन के बाद दूसरा मुख्य विषय है शरीर की शुद्धि। प्राणायाम क्रियाओं के अभ्यासी को शरीर की शुद्धि पर ध्यान देना अनिवार्य है। '**अद्भिर्गात्राणि शुध्यन्ति**' के

अनुसार शरीर की बाह्य शुद्धि तो आवश्यक है ही, परन्तु उससे कहीं अधिक आन्तरिक शुद्धि आवश्यक है। हमारा शरीर प्रकृति के तत्त्वों-सत्त्व, रज, तम से बना है। आत्मा व परमात्मा को छोड़कर अन्य सभी वस्तुएँ-प्राण, मन, बुद्धि, इन्द्रियाँ-सभी पदार्थ सत्त्व, रज, तम के संयोग से बने हैं। ये प्रकृति से बने पदार्थ हैं।

सत्त्वं ज्ञानं तमोऽज्ञानं रागद्वेषौ रजः स्मृतम्।
एतद्व्याप्तिमदेतेषां सर्वभूताश्रितः वपुः।।

मनु।।

इस श्लोक का अर्थ करते हुए महर्षि लिखते हैं, ''जब आत्मा में ज्ञान हो तब 'सत्त्व', जब अज्ञान रहे तब 'तम', जब राग-द्वेष में आत्मा लगे तब 'रजोगुण' जानना चाहिये। ये तीन प्रकृति के गुण सब संसारस्थ पदार्थों में व्याप्त होकर रहते हैं।'' इस प्रकार मन व प्राण भी त्रिगुणात्मक हैं।

छान्दोग्य उपनिषद् का वचन है-

अन्नमयं हि सोम्य मन आपोमयः प्राणस्तेजोमयी वागिति।

(६.५.४)

खाया हुआ अन्न तीन भागों में बँट जाता है, उसका सूक्ष्म भाग 'मन' बन जाता है। पिये हुए पानी का सूक्ष्म तत्त्व 'प्राण' बन जाता है। हे सोम्य! मन अन्न से बनता है, प्राण जल से बनता है। लोक में भी प्रचलित है- जैसा खाये अन्न, वैसा बने मन। इसलिए प्राणायाम के अभ्यासी को प्राण को स्थिर करने तथा मन को एकाग्र करने के लिए शरीर की शुद्धि पर ध्यान देना आवश्यक है। शरीर में तमोगुण व रजोगुण बढ़ा होगा तो प्राणायाम की सिद्धि नहीं हो सकती। भोजन व दिनचर्या पर ध्यान देकर शरीर को शुद्ध किया जा सकता है। शरीर को किसी भी आयु में ठीक किया जा सकता है तथा अपने अनुकूल बनाया जा सकता है। तामसिक व राजसिक भोजन का पूर्णतः त्याग करना होगा। शुद्ध, सात्त्विक भोजन, वह भी उचित मात्रा में समय पर ऋतु अनुसार लिया जाना चाहिये। कुछ अभ्यासी लाभकारी समझकर बादाम, मेवा आदि का सेवन करते रहते हैं, जबकि उम्र व अवस्था को देखते हुए अधिकतर मामलों में इनका पाचन ही नहीं होता तथा यह रोग उत्पन्न करता है। अतः फल, सब्जियाँ, दाल मूँग, कम संख्या में चपातियाँ, सलाद, थोड़ा दूध आदि उत्तम आहार है। खट्टे फल व नींबू, राई आदि अम्लकारक पदार्थ, मिर्च आदि तीखे पदार्थ, लहसुन, प्याज आदि तामसिक पदार्थों का सेवन नहीं करना चाहिये। हृदय सम्बन्धी या अन्य किसी रोग में यदि लहसुन व लाल मिर्च आदि राजसिक व तामसिक पदार्थों का प्रयोग किया जा रहा है, तो वह छोड़ना पड़ेगा। उनके स्थान पर अन्य कई औषध उपलब्ध हैं जो प्रयोग की जा सकती हैं। वैसे तो उचित भोजन व व्यायाम किया जावे तो हृदय सम्बन्धी प्रारम्भिक रोगों से तो अल्पकाल में ही लाभ हो सकता है।

महर्षि दयानन्द जी महाराज ने सत्यार्थप्रकाश में भक्ष्य-अभक्ष्य, पथ्य-अपथ्य के विषय में लिखा है, ''जितना हिंसा, चोरी, विश्वासघात, छल आदि से पदार्थों को प्राप्त होकर भोग करना है वह अभक्ष्य और अहिंसादि, धर्मादि कर्मों से प्राप्त होकर भोजनादि करना भक्ष्य है।'' जिन पदार्थों से स्वास्थ्य, रोगनाश, बुद्धि, बल, पराक्रम और आयु की वृद्धि होवे, उन तण्डुल, गोधूम, फल, मूल, कन्द, दूध, घी, मिष्टादि का सेवन, उन पदार्थों का यथायोग्य पाक मेल करके यथोचित समय पर मिताहार भोजन करना सब भक्ष्य कहाता है। जितने पदार्थ अपनी प्रकृति विरुद्ध करने वाले हैं, जिस-जिस के लिए जो पदार्थ वैद्यक शास्त्र में वर्जित हैं, उन-उनका त्याग, और जो जिसके लिये विहित है, उन-उनका ग्रहण करना 'भक्ष्य' है। इस उद्धरण में हिंसा, चोरी, विश्वासघात, छल, धर्मादि कर्म, यथोचित समय, मिताहार, प्रकृति के विरुद्ध, प्रकृति विहित-शब्द विशेष रूप से विचारणीय व चिन्तनीय हैं।

यदि पेट में गैस है, अम्लता है व प्राण क्रियाएँ की जा रही हैं, तो उनसे लाभ के बजाय हानि ज्यादा होगी। प्राण क्रियाएँ करने से पूर्व शरीर का सम्यक् आरोग्य आवश्यक है तथा इसके लिए रसना को नियन्त्रित करना ही पड़ेगा। रसना को नियन्त्रित करने का एक उपाय यह भी है कि विरुद्ध पदार्थों या अतिप्रिय पदार्थों में से किसी एक को कुछ समय के लिए बिलकुल छोड़ दिया जाय, उसका सेवन नहीं किया जाये। यह समय निर्धारित होना चाहिये। पुनः किसी दूसरे पदार्थ को छोड़ दें व समयबद्ध पालना करें। ऐसा अभ्यास बार-बार करने से रसना पर काफी नियन्त्रण हो सकता है। किसी विरुद्ध पदार्थ में दोष-दर्शन

ज्ञान है। दोष-दर्शन करते हुए उस इन्द्रिय रसना आदि को उस विषय से रोकना अभ्यास कहलायेगा। किसी व्यक्ति ने लम्बे समय के अभ्यास से दायें हाथ से लिखने में प्रवीणता प्राप्त की है, यदि वह अभ्यास करे तो बायें हाथ से भी उसी प्रवीणता से लिख सकता है। लम्बे समय तक रसमलाई खा-खा कर उसका खाने का संस्कार बना लिया है तो निरन्तर छोड़ने का अभ्यास करते-करते इसे पूरी तरह छोड़ा भी जा सकता है।

यहाँ पर ध्यान रखना है कि निरोगता सुनिश्चित करनी है, कमजोरी नहीं। प्राणायाम में शक्ति का व्यय होता है अत: उत्तम स्वास्थ्य व शरीर बलिष्ठ होना आवश्यक है, परन्तु सही भोजन के चयनपूर्वक।

उष्णमश्नीयात्, स्निग्धमश्नीयात्, मात्रावदश्नीयात्, जीर्णेऽश्नीयात्, वीर्याऽविरुद्धमश्नीयात्, इष्टे देशे अश्नीयात्,नातिद्रुतमश्नीयात्,नातिविलम्बितमश्नीयात्, अजल्पन्नहसंस्तन्मना भुञ्जीत, आत्मानमभिसमीक्ष्य भुञ्जीत सम्यक्।। - चरक।।

उष्ण भोजन करे। घृत-दुग्धादियुक्त चिकना भोजन करें। मात्रा में भोजन करें। पहिले खाये हुए के पच जाने पर भोजन करें। परस्पर विरुद्ध भोज्य पदार्थ न खावें। उत्तम स्थान पर भोजन करें। अतिशीघ्र न खावे। बहुत धीरे-धीरे भी न खावें। बिना हँसे-बोले भोजन करें। अपने स्वास्थ्य का विचार कर सम्यक् भोजन करें। अधिकांश जन भोजन के नियमों को जानते हैं, परन्तु आदतों के वशीभूत होकर उन नियमों का पालन नहीं करते तथा शरीर को रोगी बना लेते हैं। नियम है कि मनुष्य अपने पेट के तीन भाग करे। एक भाग रोटी आदि ठोस पदार्थों के लिए, दूसरा भाग दूध, रस आदि द्रव पदार्थों के लिए तथा तीसरा भाग रिक्त रखे, परन्तु अधिकांशत: स्वाद के वश होकर इस नियम का पालन नहीं कर पाते तथा पाचन-क्रिया खराब कर स्वास्थ्य-हानि कर लेते हैं। **भोजनान्ते विषं वारि** कहकर भोजन के बाद पानी पीने वाले भी अनेक मिल जाते हैं। अभ्यासियों के लिए उचित है कि वे अपने शरीर की प्रकृति को जानकर जो पदार्थ शरीर को आरोग्य देने वाले हैं, उनका ही सेवन करें। यदि स्वयं सम्यक् ज्ञान नहीं हो पाये तो किसी योग्य वैद्य से सलाह ली जा सकती है।

मन की शुद्धि के लिए शरीर की शुद्धि आवश्यक है, अत: अभ्यासी साधक को रसना पर तो नियन्त्रण करना ही पड़ेगा। उचित भोजनादि द्वारा साधक तन की शुद्धि के साथ-साथ मन की शुद्धि करता है, उससे राजसिकता व तामसिकता कम करता है। प्राण-क्रियाओं के अभ्यास से प्राण की स्थिरता सुलभ होती है तथा प्राण की स्थिरता से मन की स्थिरता होती है, मन की स्थिरता से आत्मा में स्थिरता आती है। साधक धीरे-धीरे अपने अभ्यास को बढ़ाता हुआ उच्चस्तरीय स्थिरता-एकाग्रता को प्राप्त करता जाता है।

अतिथि-यज्ञ के होताओं से अनुरोध

अतिथि-यज्ञ के होताओं से उनकी वैवाहिक वर्षगाँठ अथवा जन्मदिन व विभिन्न अवसरों पर ५१०० रु. प्रतिवर्ष सभा को प्राप्त होते रहते हैं। जो महानुभाव संकल्प के साथ इस पुनीत कार्य से जुड़े हुए हैं, उनसे हमारा अनुरोध है कि वे अपनी राशि भेजते समय **जन्मतिथि/वैवाहिक वर्षगाँठ आदि व दूरभाष संख्या** सूचित करना न भूलें। साथ ही यह भी अवश्य सूचित करा देवें कि पहले से भिजवा रहे हैं अथवा नया शुरू किया है। आप अपनी राशि सभा के बैंक खाते में नकद अथवा चैक द्वारा जमा करा सकते हैं।

जैसे वेद के वेत्ता विद्वान् लोग वेदानुकूल मार्ग से परमेश्वर को जानकर उत्तम ज्ञान से उसका सेवन करते हैं वैसे ही जगदीश्वर सब को उपासनीय अर्थात् सेवन करने के योग्य है, वैसे ज्ञान के विना ईश्वर की उपासना कभी नहीं हो सकती क्योंकि विज्ञान ही उसकी अवधि है।

-महर्षि दयानन्द, यजुर्वेद, भावार्थ ८.४

शङ्का समाधान - १५

डॉ. वेदपाल, मेरठ

शङ्का- सत्यार्थप्रकाश के सप्तम समुल्लास में उपासना का फल बताते हुए लिखा है- ''इसलिए परमेश्वर की स्तुति, प्रार्थना और उपासना अवश्य करनी चाहिए। इससे इसका फल पृथक् होगा, परन्तु आत्मा का बल इतना बढ़ेगा कि वह पर्वत के समान दुःख प्राप्त होने पर भी न घबरावेगा और सबको सहन कर सकेगा। क्या यह छोटी बात है?''

कृपया निम्न बिन्दु स्पष्ट करने का कष्ट करें-

(१) ''इससे इसका फल पृथक् होगा।'' जब स्वामी जी ने ईश्वर-स्तुति, प्रार्थना और उपासना का फल खोलकर अलग-अलग बता दिया, यहाँ तक कि 'ब्रह्म साक्षात्कार होगा' तक वर्णन कर दिया, तो इससे इसका फल पृथक् और क्या होगा?

(२) ''पर्वत के समान दुःख प्राप्त होने पर भी न घबरावेगा।'' यह स्थिति सामान्य दैनिक स्तुति, प्रार्थना और उपासना करने वाले व्यक्ति के लिए भी है या केवल बड़े योगाभ्यासी के लिए ही है। अर्थात् यम, नियम, आसन, प्राणायाम, प्रत्याहार, धारणा व कुछ ध्यान करने वाला व्यक्ति भी इसमें गिना जावेगा अथवा समाधि तक पहुंचे हुए योगी पर ही यह बात लागू होगी?

-इन्द्रसिंह, भिवानी (हरियाणा)

समाधान-(१)- आपकी प्रमुख शङ्का है- ''इससे इसका फल पृथक् होगा।'' इस वाक्य में संकेतित फल क्या है? क्योंकि उपासना का फल आप द्वारा उद्धृत वाक्य से पूर्व वाक्य में वर्णित है- ''**परमेश्वर के समीप प्राप्त होने से सब दोष दुःख छूटकर परमेश्वर के गुण, कर्म, स्वभाव के सदृश जीवात्मा के गुण, कर्म, स्वभाव पवित्र हो जाते हैं।**''

सत्यार्थप्रकाश में उपासना प्रसंग प्रकृत सन्दर्भ से चार पृष्ठ पूर्व से प्रारम्भ हुआ है। वहाँ प्रश्न है कि-'क्या स्तुति आदि करने से ईश्वर अपना नियम छोड़ स्तुति, प्रार्थना करने वाले का पाप छुड़ा देगा?' '**उत्तर**-नहीं'। पुनः **प्रश्न है**- 'तो फिर स्तुति, प्रार्थना क्यों करना?' '**उत्तर**-उनके करने का फल अन्य ही है। प्रश्न-क्या है? **उत्तर**-स्तुति से ईश्वर में प्रीति, उसके गुण, कर्म, स्वभाव से अपने गुण, कर्म, स्वभाव का सुधारना, प्रार्थना से निरभिमानता, उत्साह और सहाय का मिलना, उपासना से परब्रह्म से मेल और उसका साक्षात्कार होना।'

उक्त समग्र सन्दर्भ से स्पष्ट है कि प्रश्नकर्त्ता को स्तुति आदि का अभिलषित फल पाप का छूट जाना है, किन्तु महर्षि इससे पृथक् उपरिवर्णित (ईश्वर में प्रीति...साक्षात्कार होना) फल मानते हैं। पुनः महर्षि ने सगुण-निर्गुण उपासना के भेद को स्पष्ट करते हुए उपासना के फल के रूप में 'सब दोष, दुःख छूटकर जीवात्मा के गुण, कर्म, स्वभाव का पवित्र होना, प्रतिपादित किया है।

उपर्युद्धृत दोनों सन्दर्भों से स्पष्ट होता है कि महर्षि की दृष्टि में स्तुति आदि का फल-जीव के गुण, कर्म, स्वभाव का पवित्र होना तथा सब दोष दुःख का छूट जाना है।

शङ्का में उठाया प्रश्न- 'इससे इसका फल पृथक् होगा'- इस वाक्यांश में पठित 'इससे' पद साकांक्ष है। अतः पूर्व वाक्य में कहे 'जीवात्मा के गुण, कर्म, स्वभाव की पवित्रता' का परामर्शक है। यदि 'इससे' पद को हटा दें, तब वाक्यांश होगा- 'इसका फल पृथक् होगा' अर्थात् पूर्वपरामृष्ट उपासना (उपासना अवश्य करनी चाहिए) का फल पृथक् होगा। इस स्थिति में प्रश्न होगा कि पूर्व में जो उपासना का फल वर्णित है-वह क्या है? अतः वाक्यांश में 'इससे' पद प्रयोग साधु है। वाक्यांश में 'इसका' यह पद 'इसलिए परमेश्वर की स्तुति, प्रार्थना और उपासना अवश्य करनी चाहिए'-इस वाक्य का परामर्शक है। अब वाक्यार्थ होता है कि-स्तुति आदि का जो फल (ईश्वर में प्रीति, जीवात्मा की पवित्रता आदि) है, वह तो प्राप्त होगा ही, साथ ही उपासक को उक्त फल के अतिरिक्त एक अन्य फल प्राप्त होगा और वह है- ''**आत्मा का बल इतना बढ़ेगा कि वह पर्वत के समान दुःख प्राप्त होने पर भी न घबरायेगा और सबको सहन कर सकेगा। क्या यह**

छोटी बात है?''

सामान्यत: स्तुति आदि का फल ईश-साक्षात्कार/मुक्ति का अधिकारी होना अथवा लौकिक कामनाओं की पूर्ति माना जाता रहा है। महर्षि इन सबसे बढ़कर गुण, कर्म, स्वभाव की पवित्रतापूर्वक ईश-साक्षात्कार तथा आत्मिक बल की अपूर्व वृद्धि मानते हैं। आत्मिक बल की वृद्धि का प्रयोजन बड़े भारी कष्ट के समय धैर्यपूर्वक उसे सहन करना स्वीकारते हैं। साथ ही अदृश्य प्रयोजन अत्यधिक महत्त्वपूर्ण है कि बहुधा व्यक्ति कुछ वैशिष्ट्य प्राप्त कर उस अधिगत उच्च पद से च्युत होता देखा जाता है। लोक में आध्यात्मिक व्यक्तियों के बहुविध पतन के अनेक उदाहरण देखे जा सकते हैं, किन्तु यदि वह निरन्तर उपासना करता है, तब उसके विचलन-आचरण भ्रष्ट होने की संभावना न्यूनतर हो जाती है, अत: महर्षि आत्मिक बल की वृद्धि को महत्त्वपूर्ण फल (पृथक् फल) मानते हैं।

वाक्य संरचना की दृष्टि से यहाँ प्रयुक्त- 'परन्तु' पद से ध्वनित होता है कि पृथक् फल कुछ अन्य होगा तथा आत्मिक बल की वृद्धि कुछ अन्य है। किन्तु समग्र सन्दर्भ के विचारने पर स्पष्ट है कि-आत्मिक बल की वृद्धि ही महर्षि का अभिप्रेत है।

(२)- पर्वत के समान दु:ख आने पर भी न घबराने की स्थिति के लिए आवश्यक है कि व्यक्ति का आचरण भी उपासना के अनुकूल हो, क्योंकि इससे अविद्यादि मल नष्ट होना सम्भव है। यह एक साधना का पथ है, गन्तव्य के समीप पहुँचने वाला (समाधि को प्राप्त) भी पथिक है और मार्ग के मध्य (धारणा) में पहुँचा हुआ भी पथिक है। हाँ, जो गन्तव्य के जितना समीप है उसकी यात्रा पूर्ण होने की सम्भावना उतनी ही अधिक है। यम आदि का अनुष्ठाता भी लब्ध समाधि से भले ही कुछ पीछे हो, किन्तु अपने तय किए मार्ग का सही ज्ञाता भी तो वही है। अत: अभ्यासी भी लब्ध समाधि के सदृश मापे गए पथ का यात्रा एवं गन्तव्य के अनुपात में गणना के योग्य पथिक तो है ही।

दयानन्द धर्मार्थ चिकित्सालय

परोपकारिणी सभा द्वारा संचालित ऋषि उद्यान में वर्ष २०१२ से आयुर्वेदिक चिकित्सालय चल रहा है। चिकित्सालय में उपलब्ध सभी औषधियाँ नि:शुल्क दी जाती हैं। डॉ. रमेश मुनि जी चिकित्सक के रूप में इस चिकित्सालय का कुशलतापूर्वक कार्यभार सम्भाल रहे हैं।

दानी महानुभावों से सहयोग की भी अपेक्षा है।

खाताधारक का नाम - परोपकारिणी सभा, अजमेर (PAROPKARINI SABHA AJMER)

१. बैंक का नाम-**भारतीय स्टेट बैंक, डिग्गी बाजार, अजमेर।**

बैंक बचत खाता **(Savings)** संख्या-**10158172715**

IFSC-SBIN0007959

२. बैंक का नाम-**आई.डी.बी.आई**, पावर हाउस के सामने,
जयपुर रोड, अजमेर।

बैंक बचत खाता **(Savings)** संख्या-**091104000057530**

IFSC-IBKL0000091

email : psabhaa@gmail.com

जो विद्वान् लोग परोपकार बुद्धि से विद्या का विस्तार करने, सुगन्धि, पुष्टि, मधुरता रोगनाशक गुणयुक्त पदार्थों का यथायोग्य मेल अग्नि के बीच में उनका होम कर शुद्ध वायु, वर्षा का जल वा ओषधियों का सेवन करके शरीर को आरोग्य करते हैं वे इस संसार में अत्यन्त प्रशंसा के योग्य होते हैं।

- महर्षि दयानन्द, यजुर्वेद, भावार्थ ८.५८

वैदिक पुस्तकालय अजमेर
द्वारा प्रकाशित नये संस्करण

१. वेदपथ के पथिक (आचार्य धर्मवीर स्मृति ग्रन्थ)
पृष्ठ संख्या-२६४
मूल्य-रु. २००/-(आधे मूल्य पर उपलब्ध)

परोपकारिणी सभा के यशस्वी प्रधान डॉ. धर्मवीर जी का जीवन सत्य के लिये संघर्षपूर्ण रहा है। विषम परिस्थितियों में भी उन्होंने ईश्वर, वेद और धर्म को अपने जीवन से तनिक भी अलग नहीं होने दिया और यही विशेषता रही, जिसके कारण वे एक आदर्श आचार्य, आदर्श नेता, आदर्श लेखक, आदर्श सम्पादक एवं आदर्श उपदेशक के रूप में प्रतिष्ठित हुए। उनके जीवन की कही-अनकही घटनाएँ हमें भी प्रेरणा दें, इस दृष्टि से ये ग्रन्थ अवश्य पठनीय है। जिन्होंने डॉ. धर्मवीर जी को निकट से देखा है, जो उनके जीवन की घटनाओं के साक्षी रहे हैं, उनके संस्मरण इस कर्मयोगी के जीवन की बारीकियों को उजागर करते हैं। ग्रन्थ के प्रारम्भ में चित्रों के माध्यम से भी उनके जीवन की कुछ झलकियों को दर्शाया गया है।

२. महर्षि दयानन्द सरस्वती के कुछ हस्तलिखित पत्र-

पृष्ठ संख्या-३३६ **मूल्य**-रु. २००/-

महर्षि दयानन्द, उनके उद्देश्यों, कार्यों, योजनाओं एवं व्यक्तित्व को समझने में उनके द्वारा लिखे पत्र उतने ही उपयोगी हैं, जितना कि उनका जीवन-चरित्र। ये पत्र महर्षि के हस्तलिखित हैं। पुस्तक की विशेषता यह है कि इसमें मूल-पत्रों की प्रतिलिपि दी गई है और साथ ही वह पत्र टाइप करके भी दिया गया है। यह पुस्तक विद्वानों के दीर्घकालीन पुरुषार्थ का फल है। जनसामान्य इससे लाभ ले-यही आशा है।

३. अंग्रेज जीत रहा है-

लेखक - प्रो. धर्मवीर,

पृष्ठ संख्या-२२२ **मूल्य**-रु. १५०/-

इस पुस्तक में डॉ. धर्मवीर जी के 'भाषा और शिक्षा' विषय पर लिखे गये ४२ सम्पादकीयों का संकलन किया गया है। 'परोपकारी' पत्रिका में लिखे गये इन सम्पादकीयों को पुस्तक रूप में प्रकाशित करने की माँग समय-समय पर उठती रही है। अतः पुस्तक पाठकों के समक्ष प्रस्तुत है। डॉ. धर्मवीर जी का चिन्तन बेजोड़ था। वे जिस विषय पर जो भी लिखते वह अद्वितीय हो जाता था। उनके अन्य सम्पादकीयों का प्रकाशन भी प्रक्रिया में है। पुस्तक का आवरण व साज-सज्जा अत्याकर्षक है।

४. स्तुता मया वरदा वेदमाता-

लेखक - प्रो. धर्मवीर,

पृष्ठ संख्या-१३५ **मूल्य**-रु. १००/-

वेद ईश्वर प्रदत्त आचार संहिता है। वेद की आज्ञा ईश्वर की आज्ञा है और वही धर्म है, इसलिये मानव मात्र की समस्त समस्याओं का समाधान वेद में होना ही चाहिये। वेद के कुछ ऐसे ही सूक्तों की सरल सुबोध व्याख्या ही इस पुस्तक में की गई है। पुस्तक की भाषा इतनी सरल है कि नये-से नये पाठक को भी सहज ही आकर्षित कर लेती है। व्याख्याता लेखक आचार्य डॉ. धर्मवीर जी के गहन आध्यात्मिक एवं व्यावहारिक चिन्तन व अनुभवों के परिणामरूप यह पुस्तक है।

५. इतिहास बोल पड़ा-

लेखक - प्रा. राजेन्द्र जिज्ञासु,

पृष्ठ संख्या-१५९ **मूल्य**-रु. १००/-

इस पुस्तक में इतिहास की परतों से कुछ दुर्लभ तथ्य निकालकर दिये गये हैं, जो कि आर्यसमाज और महर्षि दयानन्द सरस्वती के गौरव का बखान करते हैं। पुस्तक के लेखक प्रा. राजेन्द्र जिज्ञासु हैं। ऋषि के समय में देश-विदेश से छपने वाले पत्र-पत्रिकाओं के उद्धरण इस पुस्तक में दिये गये हैं।

६. बेताल फिर डाल पर

लेखक - प्रो. धर्मवीर,

पृष्ठ संख्या-१०४ **मूल्य**-रु. ६०/-

डॉ. धर्मवीर जी की हॉलैण्ड एवं अमेरिका यात्रा का विवरण एवं अनुभव इस पुस्तक में है। विदेश में आर्यसमाज की स्थिति, कार्यशैली, वहाँ की परिस्थितियाँ एवं विशेषताओं

को यह पुस्तक उजागर करती है। यायावर प्रवृत्ति के विद्वान् आचार्य धर्मवीर जी की यह पुस्तक एक प्रचारक के जीवन पर भी प्रकाश डालती है।

७. लोकोत्तर धर्मवीर-
लेखक - तपेन्द्र वेदालंकार,
पृष्ठ संख्या-४४ **मूल्य**-रु. २०/-

तपेन्द्र वेदालंकार (सेवानिवृत्त आई.ए.एस.) ने इस पुस्तक में डॉ. धर्मवीर जी के जीवन की कुछ ऐसी घटनाओं पर प्रकाश डाला है, जिनसे धर्मवीर जी के महान् लक्ष्यों व तदनुरूप कार्यशैली का पता चलता है। इस लघु पुस्तक से प्रेरणा लेकर प्रत्येक आर्य ऋषि दयानन्द और आर्यसमाज के उद्देश्यों को पूर्ण करने में उत्साहित हो-यही आशा है।

वैदिक पुस्तकालय, अजमेर से क्रय की जाने वाली पुस्तकों की राशि ऑनलाइन जमा कराने हेतु

खाता धारक का नाम - **वैदिक पुस्तकालय, अजमेर।**

बैंक का नाम - **पंजाब नेशनल बैंक, कचहरी रोड, अजमेर।**

बैंक बचत खाता **(Savings)** संख्या - **0008000100067176**

IFSC - PUNB0000800

पुस्तक-परिचय

पुस्तक का नाम - भगवद् गीता
(अन्वय के अनुसार शब्दार्थ एवं प्रश्नोत्तर सहित)
लेखक - कन्हैयालाल आर्य
सम्पादक - आचार्य सोमदेव
प्रकाशक - चन्द्रवती आर्या वैदिक धर्म सत्साहित्य प्रकाशन-गुड़गांव (हरियाणा)
मूल्य - २८०/- **पृष्ठ संख्या** - ५७७

भगवद् गीता-महाभारत का ही एक भाग है। वर्तमान काल में भी गीता का पठन-पाठन, श्रीकृष्ण की अनन्य भक्ति के रूप में पाठ्य सामग्री बनी हुई है। भारतवासी कई सभ्रांत लोग मृत्यु के बाद गीता का पाठ कराते हैं। आज घर-घर में गीता मिल जायेगी। भिन्न-भिन्न विद्वानों ने अपने-अपने अनूठे ढंग से व्याख्याएँ की हैं। तथ्यात्मक मूल बात कर्म पर है। महाभारत के युद्ध के मैदान में पाण्डवों व कौरवों की सेनाएँ आमने-सामने हैं। पाण्डवों के साथ श्रीकृष्ण धनुर्धारी तथा कौरवों की ओर श्रीकृष्ण की सेना है। अर्जुन युद्ध के मैदान में गुरु, आचार्य, परिवारजनों को देखकर शस्त्र उठाने के लिए तत्पर नहीं होता। तब कृष्ण अर्जुन को उपदेश देते हैं। वह अठारह अध्यायों में है। अर्जुन की हताशा, अकर्मण्यता के कारण श्रीकृष्ण के उपदेशों द्वारा मनोबल को ऊँचा करने का प्रयास है।

गीता के श्लोकों पर श्री स्वामी रामस्वरूप जी ने (वैदिक रहस्य) वेद, उपनिषद् पर श्लोकों का भाव उद्धृत किया है। लेखक श्री कन्हैया लाल आर्य ने अपनी लेखनी से गीता के श्लोकों का अन्वय, शब्दार्थ एवं प्रश्नोत्तर के माध्यम से अपने विचारों की प्रस्तुति दी है। साथ ही स्वामी रामसुखदास जी, जयदयाल गोयनकाजी, आनन्दमूर्ति गुरु माँ, स्वामी समर्पणानन्द जी, श्री गुरुदत्त, डॉ. राधाकृष्णन् आदि विद्वानों के कथनों को पाठकों के समक्ष सरल एवं सर्वग्राह्य रूप में प्रस्तुत किया है।

लेखक ने किस विद्वान् के कथन में क्या तथ्य है-यह प्रश्नोत्तर से स्पष्ट किया है। पाठक मंथन कर मूल बात को समझ पायेंगे।

देवमुनि

हिन्दू जाति के रोग का वास्तविक कारण क्या है?

भाई परमानन्द जी

उच्च सिद्धान्त तथा उसके मानने वालों का 'आचरण' ये दो विभिन्न बातें हैं। मनुष्य की उन्नति और सफलता इस बात पर निर्भर करती है कि उसके सिद्धान्त और आचरण में कहाँ तक समता पाई जाती है। जब तक यह समता रहती है-यह उन्नति करता है, जब मनुष्य के सिद्धान्त और आचरण में विषमता की खाई गहरी हो जाती है। तब अवनति आरम्भ हो जाती है। मनुष्य की यह स्वाभाविक प्रवृत्ति है कि उसका लक्ष्य सदा ऊँचे सिद्धान्तों पर रहता है, परन्तु जब तक उसके आचरण में दृढ़ता नहीं होती वह उन (सिद्धान्तों) की ओर अग्रसर नहीं हो सकता है, परन्तु फिर भी संसार को वह यही दिखाना चाहता है कि उन सिद्धान्तों का पालन कर रहा है। इस प्रकार मानव समाज में एक बड़ा रोग उत्पन्न हो जाता है, धार्मिक परिभाषा में इसे ही 'पाखण्ड' कहते हैं। जब कोई जाति या राष्ट्र इस रोग से घिर जाता है तो इसकी उन्नति के सब द्वार बन्द हो जाते हैं और उसके पतन को रोकना असाध्य रोग-सा असम्भव हो जाता है।

हमारे देश में एक प्राचीन प्रथा थी कि जब कोई व्यक्ति 'उपनिषद्' आदि उच्च विज्ञान का जिज्ञासु होता था, पहले उसके 'अधिकारी' होने का निश्चय किया जाता था। 'अधिकारी' का प्रश्न बड़ा आवश्यक और पवित्र है। कई बार इसे तुच्छ सी बात समझा जाता है, परन्तु यदि ध्यान से देखा जाय तो ज्ञात होगा कि 'अधिकारी' 'अनधिकारी' का प्रश्न प्राकृतिक सिद्धान्तों के सर्वथा अनुकूल है। एक बच्चा चार बरस का है। उसको अपने साथी की साधारण सी चेष्टायें भी बड़ी मधुर अनुभव होती हैं। इनकी विचारशक्ति परस्पर समान है, इसलिये वे परस्पर मिलना और बातें करना चाहते हैं। गेंद को एक स्थान से उठाया और दूसरे स्थान पर फेंक दिया, यह काम उन्हें बहुत वीरतापूर्ण प्रतीत होता है। दो-चार बरस पश्चात् इसी गेंद जैसी तुच्छ बातों से उनकी रुचि हट जाती है। अब वे रेत या पत्थरों के छोटे-छोटे मकान बनाने में रुचि दिखाते हैं, ठीकर और कंकरों से वे खेलना चाहते हैं और ऐसे खेलों में वे इतने लीन रहते हैं कि घर और माँ-बाप का ध्यान उन्हें नहीं रहता। फिर कुछ बरस पश्चात् उनकी रुचि शारीरिक खेलों की ओर हो जाती है और पुराने खेलों को अब वे बेहूदा बताने लगते हैं। युवावस्था में उन्हें गृहस्थ की समझ उत्पन्न हो जाती है और अब सांसारिक कार्यों में उलझ जाते हैं। धीरे-धीरे उनके मन में इस संसार से विराग और धर्म में प्रवृत्ति का आविर्भाव होता है और त्याग व बलिदान के सिद्धान्तों को समझने की शक्ति उत्पन्न होती है। इससे यह स्पष्ट है कि प्रत्येक सिद्धान्त को समझने के लिये 'अधिकारी' होना आवश्यक है। आज की किसी भी सभा में चाहे वह धार्मिक हो या राजनैतिक, ९० प्रतिशत श्रोताओं को वक्ता की बतों में रस नहीं आता। बच्चों या बच्चों के से स्वभाव वाले बड़े-बूढ़ों को भी वही बात पसन्द आती है, जिस पर लोग हँसें या तालियाँ पीट दें। अतएव अनधिकारी के सम्मुख ऊँचे सिद्धान्तों का वर्णन मात्र करना भी प्रायः हानिकारक होता है।

जब किसी जाति या राष्ट्र में उन्नति की अभिलाषा उत्पन्न हो तो इसको कार्य रूप में परिणत करने का प्रथम आवश्यक साधन उसके व्यक्तियों के आचरण की दृढ़ता है। चरित्र जितना अधिक उच्च और भला होगा, उतना ही शीघ्र उच्च और भले विचार बद्धमूल होंगे। 'चरित्र' के खेत की भली-भाँति तैयार किये बिना उच्च विचारक रूपी बीज़ बिखेरना, ऊसर भूमि में बीज फेंकने के समान ही व्यर्थ होगा, उच्च विचारों की शिक्षा देने के साथ-साथ आचरण और चरित्र को ऊँचा रखने का विचार अवश्य होना चाहिये। अन्यथा चरित्र के भ्रष्ट होने के साथ-साथ यदि उच्च विचारों की बातें ही रहीं तो 'पाखण्ड' का भयानक रोग लग जाना स्वाभाविक हो जायगा।

यह पाखण्ड हिन्दुओं में कैसे उत्पन्न हुआ? और किस प्रकार भीतर-ही-भीतर दीमक की भाँति यह हिन्दू समाज को खोखला कर रहा है- यह बात मैं यहाँ दो-तीन उदाहरणों से स्पष्ट करता हूँ। 'तपस्या' का अर्थ आजकल प्रचलित भाषा में नियन्त्रण किया जा सकता है। जिस युग में हिन्दू जाति के पुरोधाओं ने 'तपस्या' को जीवन का

महत्त्वपूर्ण सिद्धान्त निर्दिष्ट किया था, वे इसके महत्त्व को जानते हुए यह भी समझते थे कि जिन लोगों को इसका उपदेश दिया जा रहा है वे भी इसके महत्त्व को समझते हैं और इन्द्रियदमन व मन के वशीकरण को आचरण में लाना 'तपस्या' का लक्ष्य समझते हैं। समय आया कि जब लोग इस तप को कुछ से कुछ समझने लगे- और अब तप इसलिये नहीं किया जाता कि अपने मन को वश में करना है अपितु इसलिये कि संसार को दिखा सकें कि हम 'बड़े तपस्वी' हैं! आग की धूनी लगाकर बैठ गये। कभी एक हाथ ऊँचा उठा लिया, कभी दूसरा और लोगों में प्रसिद्ध कर दिया कि हम बड़े तपस्वी हैं। 'तप' सिद्धान्त रूप में बहुत ऊँचा सिद्धान्त है, परन्तु यह जिन लोगों के लिये है- उनका आचरण गिर गया। 'सिद्धान्त' और 'आचरण' में विषमता होने के कारण पाखण्ड आरम्भ हो गया और आज हजारों-लाखों स्त्री-पुरुष इस पाखण्ड के शिकार हैं। 'त्याग' को ही लीजिये। 'त्याग' के उच्च सिद्धान्त पर आचरण करने के स्थान पर आज लाखों व्यक्तियों ने इसलिये घर-बार छोड़ रखा है कि वे गृहस्थ-जीवन की कठिनाइयों को सहन नहीं कर सकते। वे त्यागियों का बाना धारण कर दूसरों को ठगने का काम कर रहे हैं। कितनों ही ने न केवल सांसारिक इच्छाओं का त्याग ही नहीं किया अपितु इनकी पूर्ति के लिये प्रत्येक अनुचित उपाय का अवलम्बन तक किया है। जाति की पतितावस्था में 'त्याग' का ऊँचा आदर्श एक भारी पाखण्ड के रूप में रहता है।

देश के लिये बलिदान का आदर्श भी उच्च आदर्श है, परन्तु यदि देशभक्त कहलाने वाले व्यक्ति इसके सिद्धान्त के आचरण में इतने गिर जायें कि वे अपने से भिन्न व विरुद्ध सम्मति रखने वाले व्यक्ति को सम्मति प्रगट करने की स्वतन्त्रता भी न दें। ऐसी देशभक्ति एक प्रकार से व्यवसाय रूप देशभक्ति है। कई बार ये लोग रुपया उड़ा लेते हैं और फिर इस बात का प्रचार करते हैं कि संसार में कोई भी व्यक्ति रुपये के लालच से नहीं बच सकता, इसलिये जो व्यक्ति इनसे असहमत रहता हो उसे भी वे अपने ही समान रुपये के लालच में फँसा हुआ बताते हैं। ऐसी अवस्था में देश-भक्ति की भावना एक पाखण्ड का रूप धारण कर लेती है। इसी प्रकार, अनाथालय, विधवा आश्रम आदि सब परोपकार और सर्वसाधारण की भलाई के कार्यों के नाम पर आज जो रुपया एकत्र होता है वह सब चरित्र-बल न होने के कारण धोखे की टट्टी बने हुए हैं। 'निर्वाण' या 'मुक्ति' प्राप्त करने की भावना भी उच्च आदर्श है, परन्तु आज चरित्र-बल न होने से चरित्रहीन व्यक्तियों ने इसी 'निर्वाण' और 'मुक्ति' के नाम पर सैकड़ों अड्डे बना रखे हैं और लाखों नर-नारी इनके फन्दे में फँसकर भी गर्व करते हैं।

यदि मुझ से कोई पूछे कि हिन्दू जाति की निर्बलता और उसके पतन का वास्तविक कारण क्या है? तो मेरा तो एक ही उत्तर होगा कि इस रोग का वास्तविक कारण यह ढोंग है। हिन्दुओं में प्रचलित इस 'ढोंग' से यह भी प्रमाणित होता है कि किसी युग में हिन्दू जाति का चरित्र और आचरण बहुत ऊँचा था और इसलिये उन्हें ऊँचे आदर्श की शिक्षा दी जाती थी, परन्तु पीछे से घटनाक्रम के वश हिन्दू जाति का आचरण गिरता गया, और 'सिद्धान्त' शास्त्रों में सुरक्षित रहने के कारण ऊँचे ही बने रहे। व्यक्ति इन सिद्धान्तों के अनुकूल आचरण न रख सके-फिर भी उनकी यह इच्छा बनी रही कि संसार यह समझे कि उनका जीवन उन्हीं ऊँचे आदर्शों के अनुसार है। इस प्रकार 'सिद्धान्त और आचरण' अथवा 'आदर्श' और 'चरित्र' में विभिन्नता हो जाने के कारण 'दिखावा' या 'ढोंग' का रोग लग गया। इस समय यह ढोंग दीमक के समान जाति की जड़ों में लगा हुआ है। इस जाति के उत्थान का यत्न करने की इच्छा रखने वाले के लिये आवश्यक है कि वह पहले इस 'पाखण्ड वृत्ति' को निकाल फेंके। यदि हम अपने आचरण या चरित्र को ऊँचा नहीं बना सकते तो उच्च आदर्श का पाखण्ड रचने की अपेक्षा अच्छा तो यही होगा कि हम ऊँचे आदर्शों का लोभ त्याग कर अपने आचरणों के अनुसार ही आदर्श को अपना लक्ष्य बनायें।

विद्वान् स्त्रियों को योग्य है कि अच्छी परीक्षा किए हुए पदार्थ को जैसे आप खायें वैसे ही अपने पति को भी खिलावें कि जिससे बुद्धि, बल और विद्या की वृद्धि हो और धनादि पदार्थों को भी बढ़ाती रहें।

-महर्षि दयानन्द, यजुर्वेद, भावार्थ ८.४२

संस्था-समाचार

जन्मदिवस, विवाह वर्षगांठ पर यज्ञ- ऋषि उद्यान की यज्ञशाला में १६ नवम्बर को **श्री रमेश मुनि जी** ने अपने पुत्र सटन (इंग्लैण्ड) निवासी संजय बंसल एवं ममता बंसल के विवाह वर्षगांठ पर यज्ञ किया। २० नवम्बर को श्रीमती निर्मला गुप्ता, अजमेर ने अपने जन्मदिन पर यज्ञ किया। उसी दिन डॉ. बद्रीप्रसाद पंचोली, अजमेर ने अपनी विवाह वर्षगांठ एवं जुड़वाँ दौहित्रियों- ऋषिका, ऋतिका के जन्मदिन पर यज्ञ किया। २५ नवम्बर को श्री दिनेश नवाल, अजमेर ने अपने जन्मदिन पर यज्ञ किया। सभी यजमानों को परोपकारिणी सभा की ओर से हार्दिक शुभकामनाएं।

अतिथि- अजमेर नगर में केसरगंज स्थित परोपकारिणी सभा के ऐतिहासिक कार्यालय महर्षि दयानन्द आश्रम, अनुसन्धान भवन, पुस्तकालय, ऋषि निर्वाण स्थल-भिनाय कोठी, ऋषि उद्यान में महर्षि दयानन्द सरस्वती संग्रहालय देखने, संन्यासियों-विद्वानों से मिलने, दैनिक यज्ञ एवं प्रवचन से लाभ लेने, भ्रमण एवं प्रचार के लिए देश-विदेश के संन्यासी, वानप्रस्थी, विद्वान्, ब्रह्मचारी, गृहस्थ स्त्री-पुरुष, बच्चे निरन्तर आते रहते हैं। पिछले १५ दिनों में गोमाना, नीमच, जोधपुर, जयपुर, मुम्बई, सीतापुर, झज्जर, दिल्ली, भिण्ड, गोवा आदि स्थानों से ४० अतिथि और हॉलैण्ड निवासी श्री कन्धईलाल जी ऋषि उद्यान पधारे।

दैनिक प्रवचन- प्रात:कालीन प्रवचन में आचार्य कर्मवीर जी ने ईशावास्यम् इदं सर्वम् मन्त्र तथा धर्म-अधर्म से सुख-दु:ख की प्राप्ति विषय पर प्रवचन किया।

स्वामी विष्वङ् जी ने अहिंसा, सत्य, अस्तेय, अपरिग्रह, ब्रह्मचर्य की प्रतिष्ठा, श्रवण, मनन, निदिध्यासन से ईश्वर प्राप्ति विषय पर प्रवचन दिया।

सायंकालीन प्रवचन में सोमवार से शुक्रवार तक उपाचार्य सत्येन्द्र जी ऋग्वेदादिभाष्यभूमिका पुस्तक पर चर्चा करते हैं। ब्र. वरुणदेव जी ने वेदों की नित्यता, स्वत:प्रमाण विषय पर व्याख्यान दिया और शंकाओं का समाधान किया।

शनिवार सायंकालीन प्रवचन में स्वामी प्रशान्तानन्द जी ने पंचमहायज्ञ एवं योग अनुष्ठान पर व्याख्यान दिया। श्री रमेश मुनि जी ने कर्मफल व्यवस्था पर प्रवचन किया।

रविवारीय प्रात:कालीन सत्संग में श्रीमती कुमुदिनी जी ने भजन सुनाया। सायंकालीन प्रवचन में आर्ष गुरुकुल ऋषि उद्यान के ब्र. रमण जी ने महर्षि दयानन्द द्वारा सम्पूर्ण विश्व के मनुष्यों के कल्याण के लिये किये गये कार्यों को बताया।

व्याकरण एवं दर्शन के अध्ययन हेतु प्रवेश प्रारम्भ

महर्षि दयानन्द सरस्वती की उत्तराधिकारिणी **परोपकारिणी सभा के द्वारा 'महर्षि दयानन्द आर्ष गुरुकुल' ऋषि उद्यान, अजमेर** में पिछले १८ वर्षों से प्रारम्भिक संस्कृत ज्ञान, पाणिनीय व्याकरण और दर्शनों के अध्ययन-अध्यापन का कार्य सुचारु रूप से चल रहा है। अत: व्याकरण एवं दर्शन पढ़ने के इच्छुक विद्यार्थी प्रवेश ले सकेंगे।

इस काल में ऋषि उद्यान में प्रतिदिन यज्ञोपरान्त उपदेश व प्रवचन का लाभ भी प्राप्त हो सकेगा। समय-समय पर विविध विषयों पर विद्वानों द्वारा कक्षायें भी होती रहेंगी। ब्रह्मचारियों के लिए निवास और भोजन व्यवस्था नि:शुल्क रहेगी। प्रवेश लेने वाले ब्रह्मचारियों के लिए निम्नलिखित बातें ध्यान देने योग्य हैं-

- आयु न्यूनतम १६ वर्ष हो।
- न्यूनतम १०वीं कक्षा पढ़े हुए विद्यार्थी प्रवेश ले सकेंगे।
- गुरुकुल के अनुशासन का पालन करना अनिवार्य होगा।

अधिक जानकारी हेतु सम्पर्क करें।

स्वामी विष्वङ् परिव्राजक - ९४१४००३७५६

समय- ९:००-१०:००प्रात:, १२:३०-१:३० मध्याह्न

पता- महर्षि दयानन्द आर्ष गुरुकुल, ऋषि उद्यान, पुष्कर मार्ग, अजमेर (राज.) ३०५००१

स्वामी सच्चिदानन्द जीवन-परिचय : कुछ प्रारम्भिक खोज।

रामनिवास गुणग्राहक

आर्यसमाज की विचारधारा से मेरा उल्लेखनीय परिचय १९८६-८७ में सत्यार्थप्रकाश के स्वाध्याय के समय हुआ था। बाहर प्रचार कार्य में लगने से पहले मैंने गाँव के कुछ आर्यजनों के साथ मिलकर स्वामी नित्यानन्द जी (सेलखेडा) के मार्गदर्शन में दो-तीन वर्ष उत्सव कराकर वैदिक विचारधारा का प्रचार-प्रसार कराया। उन दिनों मेरे कानों में उड़ती-सी सूचना कई बार पड़ी कि हमारे क्षेत्र के एक स्वामी जी बहुत अच्छे विद्वान् हुए हैं। लेखन के प्रति मेरी रुचि विद्यार्थी जीवन से ही रही है, इसलिए मैंने उन्हीं दिनों अपने क्षेत्र में आर्यसमाज के बीजारोपण की जानकारी जुटाने का प्रयास किया था। उन्हीं दिनों छिंगा मितरौलिया (हरियाणा के मितरौल गाँव निवासी आर्य भजनोपदेशक) का नाम सुनने को मिला। उसी समय गाँव के पुराने आर्यसमाजी महानुभावों ने स्वामी सच्चिदानन्द जी की चर्चा की थी। तब मेरा लड़कपन अपने गाँव से बाहर की बातों में रुचि नहीं ले पाया और हम मूल्यवान् ऐतिहासिक तथ्यों से वञ्चित रह गये। तब से धुँधली पड़ चुकी यादों को परोपकारिणी सभा के मन्त्री माननीय ओममुनि जी ने ११ जून २०१७ को पुनर्जीवित कर दिया। भरतपुर के मथुरा गेट स्थित हरिजन बस्ती में मन्त्री जी की प्रेरणा से ६ से ११ जून तक मैंने बस्ती में स्थित प्राचीन शिव मन्दिर के महन्त अरुणानन्द जी के सहयोग से जीवन निर्माण शिविर लगाया था। इस शिविर के समापन पर ओममुनि जी भरतपुर पधारे तो उन्होंने पूछा कि यहाँ से पैंघौर कितनी दूर है? मैंने कहा कि निकट ही है। सभा के लोग सभा की गाड़ी में तथा मैं लक्ष्मण जी जिज्ञासु की गाड़ी में बैठा और पैंघौर के लिए चल दिये। मैं पाठकों को बता दूँ कि वहाँ पैंघौर नाम का कोई गाँव नहीं है। वस्तुत: एक छोटे पहाड़नुमा टीले पर एक पुराना मन्दिर है। इस टीले और मन्दिर की ही संयुक्त रूप से संज्ञा है पैंघौर। इस पैंघौर का पुराने कागजों में पैंगोर नाम मिलता है। इस पैंघौर के आस-पास छोटे-बड़े बारह गाँव हैं, उन्हीं में से पैंघौर टीले की पश्चिम दिशा में एक छोटा-सा गाँव है, गदरहा। इसी गाँव में स्वामी सच्चिदानन्द जी का जन्म एक साधारण किसान परिवार में हुआ था। गदहरा गाँव आज भी सड़क से सीधा जुड़ा हुआ नहीं है। लगभग सौ वर्ष पूर्व उस गाँव के किसान परिवार के युवक का वैदिक विचारधारा से जुड़ना और उससे प्रभावित होकर संस्कृत विद्या पढ़ना और समाज सेवा के क्षेत्र में ऐसा नाम कमाना कि भरतपुर के राज-दरबार में 'महामान्य' की उपाधि से विभूषित होना निश्चित रूप से बहुत बड़ी बात है। गदहरा गौव के इस लाल ने 'गुदड़ी के लाल' कहावत को चरितार्थ कर दिया।

पैंघौर जाने के सीधे रास्ते में कुछ व्यवधान था इसलिए हम गाँव मँहगाया, अवार होते हुए अपने गाँव (सुरौता) की सीमा में होते हुए पैंघौर पहुँचे। टीले पर स्थित मन्दिर के महन्त से मिले। पुराना मन्दिर तो टीले के ऊपरी शिखर पर है, यह हमारे आस-पास के गाँवों में 'चामड महया' के मन्दिर के नाम से प्रसिद्ध है। विजयदशमी से एक दिन पूर्व नवमी के दिन यहाँ बहुत बड़ा मेला लगता है। कभी इसकी ख्याति दूर-दूर तक फैली थी, इस टीले के आस-पास कँटीली झाड़ियों के कारण मन्दिर तक पहुँचना हमारे लड़कपन तक भी कठिन था। इसीलिए कुछ दानी महानुभावों ने तलहटीनुमा स्थान पर थोड़ी जगह समतल कराकर एक नया चामुण्डा मन्दिर बना दिया है और हम उसी नये मन्दिर के पुजारी से मिले थे। जब हमने स्वामी जी का नाम लेकर पूछताछ की तो वह हमें बड़े चाव से थोड़ी ऊँचाई पर बने विशाल कक्ष तक ले गया। हमने वहाँ जाकर देखा कि वह कक्ष स्वामी सच्चिदानन्द जी की स्मृति में उनके श्रद्धालु शिष्य शंकर सिंह सूबेदार ने बनवाया था। उस कक्ष पर इस

आशय का शिलालेख मुख्य द्वार के निकट लगा देखकर ओममुनि जी व हम सब बड़े प्रसन्न हुए। लक्ष्मण जी ने उस शिलालेख के तथा कक्ष के सामने खड़े करके हम सबके चित्र लिये। पुजारी ने बताया कि जनश्रुति यह है कि स्वामी जी प्राचीन मन्दिर में रहा करते थे। हमने ऊपर जाकर वह मन्दिर भी देखा, स्वामी जी के निवास के रूप में प्रयुक्त कक्ष के बारे में पूछा तो नवयुवक पुजारी कुछ अधिक न बता सका। वहाँ के भी कुछ चित्र लेकर हम कुम्हेर होते हुए सीधे रास्ते से भरतपुर आ गये।

यह प्रसंग मूलत: हमारे समक्ष सभा-मन्त्री ओममुनि जी ने उठाया, क्योंकि भरतपुर राजदरबार छोड़कर कुछ काल पर्यटन करते हुए स्वामी जी ब्यावर जा पहुँचे थे। ब्यावर प्रवास के समय ओममुनि जी को उनका स्नेहपूर्ण सान्निध्य मिला था। यही कारण था कि पैंघौर की इस यात्रा के बाद स्वामी जी के बारे में अधिक जानकारी जुटाने के लिए मुनि जी मुझे यदा-कदा प्रेरित करते रहते थे। दिनांक १५ जुलाई २०१७ को मैं पैंघौर के निकटवर्ती नगलाल खान के हमारे मित्र सत्यवीर सिंह जेलदार को साथ लेकर शंकर सूबेदार जी के गाँव 'कुम्हां का नगला' गया। हमारे पास स्वामी जी से सम्बन्धित जानकारी जुटाने के लिए शंकर सूबेदार का परिवार ही प्रमुख स्रोत था। यद्यपि शंकर सूबेदार जी का देहान्त १९ दिसम्बर २०१५ को हो चुका है। उनके छोटे भाई से मिले तो उन्होंने कहा कि इस सम्बन्ध में अधिक जानकारी शंकर सूबेदार के पुत्र राजवीर ही दे सकते हैं, जो आजकल कुम्हेर में रहते हैं। हमने पूछा कि गाँव में उनकी मित्रमण्डली के कुछ वृद्ध सज्जन हों तो एक बार उनसे मिलकर कुछ जानकारी प्राप्त करने का प्रयास करें। वे बोले कि वैसे तो भैया बड़े अन्तर्मुखी प्रवृत्ति के थे, किसी से खुलकर चर्चा नहीं करते थे, फिर भी सुजान सिंह एस.डी.आई. हैं, जो उनके निकट के मित्र रहे हैं। सत्यवीर जी मुझे सुजान सिंह जी के घर ले गये। वहाँ हमने उनसे पूछताछ की तो वे अधिक कुछ न बता सके। उन्होंने इतना अवश्य कहा कि वे (शंकर सूबेदार) बताया करते थे कि स्वामी जी आर्य संन्यासी थे, आर्य समाज का प्रचार-प्रसार करते थे। सुजानसिंह जी स्वयं भी धार्मिक प्रवृत्ति के पुरुष थे। उनके पास मैंने आर्यसमाज का साहित्य भी देखा, जिसमें सत्यार्थप्रकाश भी था। इस यात्रा में हमें शंकर सूबेदार के पुत्र राजवीर जी का पता मिलने से कार्य आगे बढ़ाने का एक सार्थक सूत्र मिल गया।

१५ जुलाई को ही सायं को मैं श्रीगंगानगर के लिए चल दिया और इस दिशा में होने वाला कार्य आगे न बढ़ सका। हाँ, ओममुनि जी और लक्ष्मण जी 'जिज्ञासु' मुझे जब-तब प्रेरित करते रहते। कुछ पारिवारिक कार्यों के चलते मुझे गाँव जाना था, सोचा चलो 'एक पंथ दो काज' जैसा लाभ मिल जाएगा। संयोग ऐसा बना कि १५ अगस्त का कार्यक्रम आर्यसमाज श्रीगंगानगर में करके रात को 'उद्यान आभा' से चलकर १६ को गाँव आ गया। पूर्व निर्धारित कार्यक्रमानुसार १९ अगस्त को प्रात: १०-११ बजे के बीच लक्ष्मण जी डॉ. अशोक आर्य को साथ लेकर अपनी गाड़ी से मेरे घर आ गये। इससे पूर्व मैंने श्री वीरेन्द्र आर्य से वार्तालाप करके राजवीर जी का मोबाइल नम्बर ले लिया था और उनसे चर्चा करके उनसे मिलने का समय तय कर लिया था। सामान्य शिष्टाचार के बाद भोजन करके हम तीनों कुम्हेर के लिए निकले। कुम्हेर पहुँचकर प्रथम वीरेन्द्र जी को साथ लिया और राजवीर जी के घर पहुँच गये। राजवीर जी स्वयं भी सेना में रह चुके हैं, सूबेदार पद से सेवानिवृत्त हैं। सौम्य स्वभाव के मिलनसार व सहयोगी प्रवृत्ति के राजवीर जी ने हमारे साथ बड़ी आत्मीयता से वार्तालाप किया। उनसे जो विशेष जानकारी प्राप्त हुई वह तो लक्ष्मण जी ने अपने मोबाइल में रिकॉर्ड कर ली, उसे लेख में प्रस्तुत नहीं किया जा सकता। उसके लिए पाठकों को स्वामी जी के जीवन पर प्रकाशित होने वाली पुस्तक की प्रतीक्षा करनी होगी, हाँ कुछ मुख्य बातें संक्षेपत: यहाँ दी जा सकती हैं।

स्वामी सच्चिदानन्द जी समाज-सुधार के अग्रदूत के रूप में ऐसी ख्याति प्राप्त कर चुके थे कि भरतपुर के महाराज ने उन्हें 'महामान्यवर' की उपाधि देकर एक विशेष कार्य सौंप रखा था। वह कार्य था राज्य के अभावग्रस्त, पिछड़े, निर्धन परिवारों के प्रतिभावान् बालकों की पहचान करके उन्हें शिक्षित करना और आगे बढ़ाना। राजवीर जी ने ऐसे कई व्यक्तियों के नाम लिये जिनके पिता जी को स्वामी जी ने विशेष रूप से शिक्षित किया था। शिक्षित करने का अर्थ यह नहीं कि केवल पढ़ाना-लिखाना, बल्कि एक पिता की तरह लाड़-प्यार देकर उन्हें अपना बनाना और उनकी अधिकतम देखभाल करना। राजवीर जी ने बताया कि मेरे दादा जी बुद्धाराम वैद्य स्वामी जी के अति प्रिय सेवक थे। मेरे पिताजी (शंकर) के जन्म के बाद मेरी दादी रतनकौर की मृत्यु हो गई थी। दादा जी ने कहा कि यह बिना माँ का बेटा, कैसे पलेगा, क्या बनेगा, तो स्वामी जी ने मेरे पिताजी की शिक्षा-दीक्षा को अपने कर्त्तव्य के रूप में स्वीकार किया। इतना ही नहीं, जब वे ब्यावर चले गये तो वहाँ से पिताजी के लिए राजस्थानी जूतियाँ लेकर आते थे। भरतपुर खिरनीघर निवासी पं. खेमचन्द उपाध्याय जी के पिताजी का लालन-पालन व शिक्षा-दीक्षा भी स्वामी जी ने करायी। प्रतिभावान् बच्चों को आगे बढ़ाने के साथ ही पुराने जमीदारों के क्रूर शोषण से निर्धन किसानों से बचाने का, उनके अत्याचारों से मुक्ति दिलाने का मानवीय कार्य भी राजदरबार ने उन्हें सौंप रखा था। पाठक भरतपुर के न्यायप्रिय, प्रजावत्सल महाराज किशनसिंह के प्रजापालक स्वरूप की झलक इसमें स्पष्ट देख सकते हैं, साथ ही राजदरबार का ऐसा विश्वास अर्जित करके प्रजा के रक्षण-पोषण में जीवन लगा देने वाले स्वामी सच्चिदानन्द जी के जीवन आदर्श को अनुभव करके इन दोनों की महानता को नमन करें। स्वामी जी के जीवन की कुछ विशेष घटनाएँ जो मैंने कुछ अन्य लोगों से प्राप्त की हैं, परोपकारी के अगले अंकों में देने का प्रयास करूँगा।

एक आहुति
अपने आचार्य के लिए.....

ऋषि दयानन्द की उत्तराधिकारिणी परोपकारिणी सभा की तन, मन, धन से सेवा करने वाले, उसे अपनी मातृवत् समझने वाले और यहाँ तक कि अपना जीवन समर्पित कर देने वाले डॉ. धर्मवीर आज अपना समस्त भार आर्यजनता अर्थात् अपने उत्तराधिकारियों पर छोड़ गये हैं। उन्होंने ऋषि के स्वप्नों को अपना कर्त्तव्य समझकर सभा को गगनचुंबी ऊँचाइयों तक पहुँचाया। अनेक नये प्रकल्प चलाये यथा-वैदिक गुरुकुल, गौशाला, आश्रम, अतिथियों के ठहरने व खान-पान की नि:शुल्क व्यवस्था आदि। उन्होंने जो-जो कार्य छेड़े उनकी आवश्यकताओं की पूर्ति में कभी न्यूनता न आने दी। परोपकारिणी सभा ऐसे पुत्र को प्राप्त कर गौरव का अनुभव करती है और बिछुड़कर शोकग्रस्त होने का भी। उनके द्वारा शुरु किये कार्य कभी शिथिल न पड़ें, इस कारण **सभा ने डॉ. धर्मवीर जी की स्मृति में एक करोड़ रु. की स्थिर निधि बनाने का संकल्प लिया है,** जिससे कि धन धर्म के काम आ सके। इसमें सन्देह नहीं कि ये समस्त कार्य आर्य जनता के सहयोग से ही प्रारम्भ हो सके हैं और सहयोग से ही चल भी रहे हैं। इसलिये इसमें भी सन्देह नहीं कि सभा के इस संकल्प को आर्य जनता शीघ्र पूर्णता की ओर पहुँचा देगी और शायद उससे भी कहीं बढ़कर। यज्ञ तो हवि माँगता है। बिना हवि के यज्ञ की कल्पना भी क्या? बस देरी तो सूचित होने की है। हवि बनना तो आर्यों के खून में है, तन से, मन से अथवा धन से।

आप अपना दान चैक, ड्राफ्ट या सभा के खाते में सीधे भी भेज सकते हैं। कृपया, राशि भेजने के पश्चात् सभा में दूरभाष या पत्र द्वारा अवश्य सूचित कर दें।

- मन्त्री

उत्तम समाज की उत्पत्ति उत्तम ज्ञान के प्रचार-प्रसार से ही संभव

प्रकाश चौधरी

सांख्य दर्शन में कहा गया है- समझने-समझाने वाले सतत प्रयत्नशील रहते हैं तो समाज विवेकपूर्वक काम करता है, नहीं तो अन्धों के पीछे चलने वाले अन्धों के समान भटकते फिरते हैं। ''यदि विचारशील व्यक्ति तथा उपदेशक अपने-अपने क्षेत्रों की बुराइयों को दूर करने का निरन्तर प्रयास करते रहें, तभी समाज सुन्दर एवं पवित्र बन सकता है। आरम्भ से ही सुशिक्षित माता-पिता, शिक्षक, अनुभवी विचारक अपनी सन्तानों को उत्तम विचारों से सुसंस्कृत करते रहें तभी उत्तम समाज का बनना संभव है।''

आज का समाज उत्तम विचारों से हीन हो रहा है। अच्छाई कम तथा बुराई अधिक दृष्टिगोचर होती है। अच्छाई की मात्रा घट रही है। अपने प्राचीन इतिहास पर यदि दृष्टि डालें तो वाल्मीकि कृत रामायण में जो अयोध्या का वर्णन आता है, उसके अनुसार न कोई राजा था न कोई कानून। सिर्फ व्यवस्था थी। सब अपने-अपने कर्त्तव्य का पालन करते थे। एक-दूसरे के सहायक व रक्षक थे। नगरी अति सुन्दर थी। उस समय की वास्तुकला तथा वैज्ञानिक उत्कर्ष की तुलना आज का कोई भी राष्ट्र नहीं कर सकता। सुख समृद्धि होते हुए भी भोगवाद का दोष न था। उच्चकोटि के ज्ञानी विद्वान् एक मत से राष्ट्र के कार्य करते थे। शान्तिप्रद वातावरण था। समाज में कोई कामी, नास्तिक, मूर्ख, झूठा व्यक्ति नहीं था। स्वच्छता का वर्णन करते हुए कहा गया है कि उस समय मच्छर, मक्खी, सर्प आदि समाप्त कर दिए गए थे।

इस प्रकार का सुन्दर स्वर्गमय वातावरण आज किसी राष्ट्र का नहीं। विकसित देश भले ही आर्थिक रूप से उत्कर्ष पर हों, परन्तु नैतिक एवं मानवीय मूल्यों का स्तर निम्न ही है। वास्तव में आज इस वर्तमान काल में अच्छाई कम तथा बुराई अधिक बढ़ रही है। अच्छाई प्रयत्न से बढ़ती है और बुराई स्वयं तेजी से बढ़ती है। इसीलिए ज्ञान का प्रचार-प्रसार अत्यन्त आवश्यक है।

कठोपनिषद् में आचार्य यम इसका कारण बताते हुए कहते हैं- प्रभु ने हमारी इन्द्रियों को बहिर्मुखी बनाया है जो बाहर के सुखों की ओर दौड़ती हैं। इनका इनके गुह्य विषयों की और दौड़ना स्वाभाविक है। इनकी सार्थकता भी इस बात में है, क्योंकि यदि आँख, कान, नाक आदि न होते तो प्रभु के बनाये-रचाये सुन्दर दृश्य, प्राकृतिक सौंदर्य, हर प्रकार के प्राणी, वनस्पति आदि का आनन्द कौन उठाता? इसी प्रकार रचनाओं की सार्थकता भी इसी में है कि उनका आनन्द कोई ले सके। लेकिन वास्तविक सार्थकता इस बात में है कि प्रत्येक ज्ञानेन्द्रिय उस वस्तु के विषय को ग्रहण करे जिससे उसकी अपनी आत्मा में तथा समाज में अच्छाई उत्पन्न हो। उचित तथा अनुचित का भान, उच्च चरित्रवान् शिक्षकों के दिए गए ज्ञान व अनुभव द्वारा ही किया जा सकता है। समाज की मर्यादाओं का ज्ञान माता-पिता एवं गुरु द्वारा प्रयत्नपूर्वक दिया जा सकता है। अत: अच्छाई प्रयत्नपूर्वक प्रचार-प्रसार से उत्पन्न होती है।

अच्छाई और बुराई का क्रम सृष्टि के आरम्भ से ही चला आ रहा है। मनु महाराज लिखते हैं-'धीरे-धीरे ज्ञानियों का सम्पर्क विच्छिन्न होने से क्षत्रिय जातियाँ उत्तम आचरणों से शून्य होकर असंस्कृत और असभ्य हो गयीं।' वेद कहता है कि समाज को शिष्ट बनाने के लिए मनुष्य का पहला कर्त्तव्य है कि जिस अच्छाई को उसने जान लिया है उसका प्रचार-प्रसार करे। कुछ ज्ञानी उपदेशक प्रमाद व आलस्यवश सद्विचारों का प्रचार-प्रसार नहीं करते और बुराई की मात्रा बढ़ने लगती है। एक और कारण बुराई के बढ़ने का यह भी है कि कुछ स्वार्थी व्यक्ति धन खर्च करके बुरे व्यसनों का प्रचार करते रहते है। शराब-सिगरेट आदि का निरन्तर प्रचार करते हैं। इतना प्रचार किसी अच्छी वस्तु एवं विषय का नहीं होता।

मनुष्य को अपनी इन्द्रियों की वृत्ति के अनुकूल चलना सरल लगता है। परिणाम तक विचारना उसको बोझ लगता है। परिणाम तक सोचने के लिए धैर्य तथा संकल्प की आवश्यकता होती है जो उसे कठिन मार्ग लगता है। इस प्रकार वह अच्छाई और बुराई, उचित तथा अनुचित का

भान किये बिना चलता जाता है। यहाँ ज्ञानी एवं विचारशील व्यक्ति ही सही मार्ग दिखा सकते हैं।

कुछ मनुष्यों को लगता है कि प्रचार-प्रसार से या उपदेशों से कुछ सुधार नहीं हो सकता। उपदेश सुने तो जा सकते हैं पर आचरण में लाना कठिन है, परन्तु यह एक भ्रम है। मनुष्य एक विचारशील प्राणी है। उसमें अनुकूल ग्रहण करने की इच्छा जागृत होती है और प्रतिकूल को छोड़ने की । जैसे-जैसे भाव उसे दिए जाते है, वह उन्हीं भावों में बहने लगता है। इतिहास में ऐसे कई दृष्टान्त मिलते हैं, जब समय पर दिए गए विचारों ने उनकी परिस्थितियों को बदल डाला। जयपुर के महाराजा मानसिंह काबुल को जीतने का संकल्प लेकर निकले। रास्ते में 'अटक' नदी में उठती वेगवती धाराओं को देखकर वहीं पड़ाव डालकर चिन्तित होने लगे, बहुत विचारने पर भी निर्णय नहीं ले सके कि क्या किया जाये।

एक ओर जीतने की प्रतिज्ञा तथा दूसरी और फौज के डूबने का भय। वह अपनी माता को पत्र लिखते हैं और सारी स्थिति का विवरण बताते हैं। माता तुरन्त उत्तर में लिखती है-

''सबै भूमि गोपाल की, यामैं अटका कहाँ,
जिसके मन में अटक है, सोई अटक रहा''

इस दोहे ने राजा मानसिंह की मानसिक स्थिति में परिवर्तन ला दिया-सारा भय जाता रहा। अपनी सेना को नदी पार करने का आदेश दिया। उनका घोड़ा पार उतर गया। सैनिक कुछ पार हुए, कुछ बह गए। उनका काबुल विजय का संकल्प पूरा हुआ। अत: विचारों को बदला जा सकता है यदि प्रयत्न किये जायें। जीवन में अच्छे विचारों को लाने का निरन्तर अभ्यास हो। अच्छी सोच की मात्रा अधिक हो। वार्तालाप द्वारा मार्गदर्शन हो। इसके लिए विचार विनिमय से उसका मनोबल बढ़ा कर दूर कर सकते हैं। शुभ विचारों का प्रचार-प्रसार निरर्थक नहीं जाता। समाज में शान्ति और सुख बढ़ाने का यह महत्त्वपूर्ण साधन है और आवश्यक भी।

यूँ तो धर्म के सभी कार्य मनुष्य के मन को निर्मल करते हैं और आत्मिक उन्नति देते हैं, किन्तु ज्ञान का प्रचार-प्रसार सर्वोपरि है। किसी दूसरे को प्रकाशित करना मानो उसको कितने जीवन-दान देना है। ज्ञान का प्रचार इतना श्रेष्ठ कर्म है कि यदि जीव को मुक्ति न भी मिले पर उसे मनुष्य की योनि तो अवश्य ही मिलेगी, क्योंकि जिस वस्तु का दान हमने किया वही वस्तु हमें अगले जन्म में प्राप्त होगी। ऐसा कर्म विज्ञान कहता है। ज्ञान मनुष्य के लिए है-दूसरे प्राणियों के लिए नहीं। अत: मनुष्य को जानी हुई अच्छाई का प्रचार-प्रसार अवश्य करना चाहिए।

अग्निहोत्र करते हुए जल सिंचन का मन्त्र **''देव सवितः प्रसुव यज्ञं प्रसुव यज्ञपतिं भगाय...''**

के चौथे भाग में चार प्रार्थनाएँ की गयी हैं।

१. हे प्रभु! मनुष्य के हृदय में शुभ कर्म करने की प्रेरणा करो।

२. शुभ कर्म करने वालों का उत्साह बढ़ाओ।

३. जो ज्ञान से ओत-प्रोत हैं वे सामान्य व्यक्ति का मार्ग-दर्शन करें।

४. वाणी के स्वामी! हमारी वाणी में माधुर्य दें।

स्वामी दयानन्द जी ने अपने अमर ग्रन्थ 'सत्यार्थप्रकाश' में प्रार्थना का वास्तविक रूप समझाते हुए कहते हैं कि प्रार्थना प्राणी मात्र और मनुष्य मात्र की सुख-समृद्धि के लिए करनी चाहिए। ऋषि मन्त्र में चार प्रार्थनाओं का वास्तविक भाव बताते हुए कहते हैं कि समाज को सुखी बनाने के लिए प्रत्येक व्यक्ति को चार कर्त्तव्यों का पालन करना चाहिए। उसे-

१. सद्विचारों का प्रचार-प्रसार करना चाहिए।

२. उत्तम कर्म करने वालों के काम की प्रशंसा करनी चाहिए ताकि उनका मनोबल बढ़े।

३. जो ज्ञान हमें प्राप्त हो उसे पूरे संकल्प के साथ अपने आचरण में ढालना चाहिए।

४. अनुभवी व्यक्तियों से मधुर एवं सत्य भाषण की शिक्षा लेकर अपनी वाणी को मधुर बनाया जाये। ऐसी वाणी जो व्याकुल एवं दुखी व्यक्ति को शान्त कर सके।

सार यही है कि हमारे ऋषि मुनियों ने शुभ विचारों को और उनके प्रचार-प्रसार को सर्वोपरि कहा। हमारा अपना इतिहास भी इस बात का गवाह है कि समय-समय पर महापुरुषों ने अपने ऊँचे विचार और आचार से ही मनुष्य समाज का नैतिक और व्यावहारिक स्तर ऊँचा किया

और सुख और शान्ति प्रदान की । महाभारत युद्ध के उपरान्त कोई ज्ञानी जब न बचा तो देश में अराजकता फैली। अनेकों मत उत्पन्न हुए जिन्होंने आपसी द्वेष पैदा किये। एक असभ्य एवं जंगली वातावरण बना। मूल उत्तम संस्कृति का विनाश हुआ। उस समय में भी कुछ महान् आत्माओं ने समाज को बचाने के प्रयत्न किये, परन्तु दासता की बेड़ियों से बच न सका ये देश। तभी स्वामी दयानन्द जैसे वर्चस्वी सुधारक ने समाज में अपने प्रवचनों द्वारा, अपने सत्य के द्वारा समाज को विवेक दिया। जागरुक किया। सत्य और असत्य का ज्ञान कराया। कितने उपकार किये, कितना प्रयत्न-पुरुषार्थ किया समाज को सही मार्ग दर्शाने के लिए।

अत: जब तक ''समझने-समझाने वाले सतत् प्रयत्नशील रहते हैं तो समाज विवेकपूर्वक कार्य करता है।'' सद्विचारों का प्रचार-प्रसार ही व्यक्ति एवं समाज को स्वच्छ तथा शान्ति का वातावरण दे सकता है।

सांख्य दर्शन का अध्यापन

महर्षि दयानन्द सरस्वती की उत्तराधिकारिणी परोपकारिणी सभा के द्वारा 'महर्षि दयानन्द आर्ष गुरुकुल' ऋषि उद्यान, अजमेर में वर्षों से संस्कृत व्याकरण और दर्शनों का अध्यापन कार्य सुचारु रूप से चल रहा है। इसी क्रम में 'महर्षि कपिल मुनि' विरचित 'सांख्य दर्शन' का अध्यापन स्वामी विष्वङ् परिव्राजक द्वारा ०१ जनवरी २०१८ से विधिवत् रूप से कराया जायेगा। यह दर्शन ६ महीने में पूर्ण हो जावेगा।

इस काल में ऋषि उद्यान में प्रतिदिन यज्ञोपरान्त उपदेश व प्रवचन का लाभ भी प्राप्त हो सकेगा। समय-समय पर विविध विषयों पर विद्वानों द्वारा कक्षाएँ भी होती रहेंगी। ब्रह्मचारियों हेतु निवास और भोजन व्यवस्था नि:शुल्क है। अन्य शिक्षार्थियों के लिये निम्नलिखित नियम लागू होंगे-

१. पढ़ने के इच्छुक लोग अपना पंजीकरण सुनिश्चित कर लेवें। २. पृथक् आवास हेतु प्रति व्यक्ति २,०००/-दो हजार रुपये प्रतिमास अग्रिम जमा कराना आवश्यक है। ३. भोजन, प्रातराश इत्यादि के लिये प्रति व्यक्ति प्रतिमास ३,०००/- तीन हजार रुपये देय होंगे। ४. सामूहिक रूप से आवास के लिये कोई शुल्क नहीं लगेगा और पुरुषों तथा महिलाओं के लिये अलग-अलग दीर्घ कक्ष में व्यवस्था होगी। ५. बच्चों को साथ लाये जाने पर प्रार्थी को सत्र में प्रवेश नहीं दिया जायेगा। ६. किसी भी मादक द्रव्य, चाय-कॉफी आदि का सेवन निषिद्ध होगा। ७. शिक्षार्थियों को आश्रम के साफ-सफाई एवं रखरखाव में योगदान करना अपेक्षित होगा। ८. नियम व अनुशासन का पालन करना सभी को अनिवार्य होगा। ९. अकेली महिला हो, तो अवस्था ५० या ५० से अधिक होनी चाहिए। १०. प्रत्येक व्यक्ति को यज्ञशाला में आयोजित सत्संग एवं देवयज्ञ में दोनों समय आना अत्यावश्यक है।

नोट:- अपना पंजीकरण फोन से करा सकते हैं एवं अग्रिम राशि ऑनलाइन जमा कराने हेतु नीचे लिखे बैंक में जमा करा सकते हैं।

खाताधारक का नाम - परोपकारिणी सभा, अजमेर (PAROPKARINI SABHA AJMER)

१. बैंक का नाम-**भारतीय स्टेट बैंक, डिग्गी बाजार, अजमेर।**

बैंक बचत खाता **(Savings)** संख्या-**10158172715**

IFSC-SBIN0007959

२. बैंक का नाम-**आई.डी.बी.आई**, पावर हाउस के सामने,

जयपुर रोड, अजमेर। बैंक बचत खाता **(Savings)** संख्या-**091104000057530**

IFSC-IBKL0000091

सम्पर्क सूत्र- परोपकारिणी सभा - ०१४५-२४६०१६४, ऋषि उद्यान - ०१४५-२६२१२७०

अतिथि यज्ञ के होता बनें

महर्षि दयानन्द सरस्वती की उत्तराधिकारिणी परोपकारिणी सभा आर्य जगत् की एकमात्र ऐसी संस्था है जो सामूहिक सहयोग से ऋषि द्वारा निर्धारित लक्ष्यों की पूर्ति हेतु कृत संकल्प है।

सभा निरंतर प्रगति के पथ पर अग्रसर है। निरंतर अबाध गति से ऋषि उद्यान को आकर्षक एवं जन उपयोगी बनाने हेतु नव निर्माण करा रही है, वेद प्रचार पूरे देश में संचालित कर रही है, वेदों का एवं ऋषि ग्रंथों का प्रकाशन निरंतर जारी है।

प्रातः एवं सायं दैनिक यज्ञ– प्रवचन, वेद–पाठ, उपनिषद्, दर्शनादि शास्त्रों की कथा द्वारा वैदिक धर्म का कार्य नियमित रूप से आश्रम में चलता है। ***गुरुकुल***– आर्ष पद्धति से संचालित गुरुकुल में पढ़ रहे ब्रह्मचारी जो साधना एवं समाज सुधार का लक्ष्य लेकर अध्ययनरत हैं उनकी सभी आवश्यकताओं की पूर्ति निःशुल्क की जाती है। ***अतिथि सेवा***– अतिथियों को यथोचित सुविधा प्रदान करने हेतु सभा पूर्णरूपेण प्रयासरत है एवं सभी सुविधाएँ आवास, प्रातराश, भोजन की व्यवस्था निःशुल्क की जाती है। ***गोशाला***– गोशाला में चालीस के लगभग पशु हैं। इससे अधिक का स्थान नहीं है। आश्रमवासियों को गोशाला में उत्पादित दुग्ध का निःशुल्क वितरण किया जाता है। ***वानप्रस्थ एवं संन्यास आश्रम***– वानप्रस्थ एवं संन्यास आश्रम में रहकर साधनारत वानप्रस्थियों एवं संन्यासियों की सभी प्राथमिक आवश्यकताओं की पूर्ति सभा द्वारा निःशुल्क की जाती है। स्वाध्याय एवं साधना की व्यवस्था है। ***विशाल पुस्तकालय***– इसमें दुर्लभ ग्रंथों का संग्रह है, सभा द्वारा शोधकर्ता छात्रों को शोध कार्य हेतु ग्रंथ निःशुल्क प्रदान किए जाते हैं जिनका लाभ स्वाध्यायशील व्यक्ति भी उठा सकते हैं। ***व्यायामशाला***– योग्य शिक्षक द्वारा नगर के युवाओं को ऋषि उद्यान में निःशुल्क व्यायाम प्रशिक्षण दिया जाता है। सभा द्वारा नियुक्त व्यायाम शिक्षक आसपास के गांवों में भी आर्यवीर दल का प्रशिक्षण शिविरों में प्रदान करते हैं।

ये सभी क्रियाकलाप आपके पावन उदार सहयोग से ही संभव हैं। जैसा कि सर्वविदित है कि सभा का आधार ही आकाशीय दानवृत्ति है। आपको प्रतिदिन अतिथि मिलना संभव नहीं फिर अतिथि यज्ञ कैसे किया जाय इसका उपाय है, कुछ राशि प्रतिदिन अतिथि यज्ञ के नाम से निकाल ली जाये और उसको एकत्र कर अतिथि सत्कार में गुरुकुल में भोजन आदि के सहयोग में दे दी जाय।

सभा के धार्मिक क्रियाकलापों एवं आवासीय स्थल ऋषि उद्यान में उपर्युक्त पावन क्रियाकलाप लम्बे समय तक अबाध चलते रहें इसके लिए सभा की योजना है कि प्रतिदिन १० रुपये अथवा प्रतिवर्ष ५ हजार की राशि प्रदान करने वाले उदार यशस्वी दानदाताओं का नाम अतिथि यज्ञ के स्थायी सदस्यों में अंकित किया जाता है ऐसे सज्जनों के नाम का परोपकारी में प्रकाशन भी किया जाता है।

अनेक 'अतिथि यज्ञ के होता' सदस्यों का आग्रह है, निश्चित तिथि जन्मदिन, विवाह वर्षगांठ या विशेष अवसर पर वे अपनी ओर से संस्था में भोजन कराना चाहते हैं। ऐसे महानुभावों से निवेदन है कि वे अतिथि यज्ञ के होता के रूप में एक दिन के भोजन व्यय की राशि लगभग पाँच हजार एक सौ रुपये भेजते हुए इच्छित दिन का विवरण सूचित करेंगे तो उसका उल्लेख आश्रम के सूचना पट्ट पर किया जा सकेगा।

यह अल्प राशि आप दैनिक संचय घट में जमा भी कर सकते हैं, वर्ष में लोग अरबों रुपए आग में पटाखे जलाकर व्यय करते हैं, असावधानी से बिजली जलती छोड़ इसे गंवा देते हैं आदि ऐसी छोटी–छोटी असावधानियों को रोक कर हम उसकी बचत राशि इस पावन कृत्य हेतु सभा को वर्ष में आसानी से दे सकते हैं।

सभा शिविरों के आयोजन द्वारा जन सामान्य को ऋषियों की जीवन प्रणाली सिखा रही है। आप इस योजना में स्थायी सदस्य बनकर ऋषि का संकल्प *संसार का उपकार* की पूर्ति में एक स्तम्भ बनकर सभा को सम्बल प्रदान कर सकते हैं।

यदि अपने सामर्थ्य के अनुसार राशि को न्यूनाधिक करना चाहें तो आपकी स्वतन्त्रता है अधिक से अधिक लोग परोपकारिणी सभा से जुड़ सकें, आप ऐसा करके ऋषि दयानन्द के कार्यों को आगे बढ़ाने में सहायक होंगे इसलिए ऐसी राशि निश्चित की है। आप से प्रार्थना है अपना नाम पता और संकल्प लिखकर अवगत करायें और अतिथि यज्ञ के होता बनें। अपनी राशि प्रतिमाह अथवा सुविधानुसार मनीआर्डर/डीडी/चैक द्वारा अथवा स्वयं उपस्थित होकर कार्यालय में जमा करा सकते हैं। आपका दान ८०जी (आयकर की धारा) के अंतर्गत कर मुक्त होगा।

अतः आपसे निवेदन है कि आप भी अतिथि यज्ञ के होता बनिये। जिन महानुभावों ने हमारा निवेदन स्वीकार कर यज्ञ में अपनी आहुति दी है, उनके नाम यहाँ प्रकाशित किये जा रहे हैं।

अतिथि यज्ञ के होता

(१ नवम्बर से १५ दिसम्बर २०१७ तक)

१. सात्विक फाउन्डेशन, गाजियाबाद २. श्री कपिल सोनी, पाली ३. कु. उन्नति वर्मा, पाली ४. श्री सौरभ कुमार मल्होत्रा, दिल्ली ५. श्री भँवरलाल व्यास, भीलवाड़ा ६. श्री कन्हैया लाल आर्य, भीलवाड़ा ७. श्रीमती वसुधा झँवर, मुम्बई ८. श्री वेदभूषण रस्तोगी, गाजियाबाद ९. डॉ. एस.के. सिंह व श्रीमती शुभदा देवी, महाराजगंज १०. श्री रामप्रकाश शर्मा, जोधपुर ११. श्रीमती शिप्रा पुलक पारीक, जोधपुर १२. डॉ. बद्रीप्रसाद पंचोली व श्रीमती कमला देवी पंचोली, अजमेर १३. श्री विश्वामित्र भँवरलाल आर्य, जोधपुर १४. श्रीमती यशोदा रानी सक्सेना, कोटा १५. श्री तरुण त्यागी, गाजियाबाद १६. श्री शिव कुमार अग्रवाल, मेरठ १७. श्री सुयश अग्रवाल, मेरठ १८. श्री भूपेन्द्र एडवोकेट, मेरठ १९. श्री कृष्ण अग्रवाल, मेरठ २०. डॉ. नन्दकिशार काबरा, ऋषि उद्यान, अजमेर २१. श्री विजयसिंह गहलोत व श्रीमती कंचन गहलोत, ऋषि उद्यान, अजमेर २२. श्री सुरेश चन्द्र गर्ग, जयपुर २३. स्वामी देवेन्द्रानन्द, ऋषि उद्यान, अजमेर २४. श्री राजेश भूटानी, दिल्ली २५. श्री प्रेम चौहान, दिल्ली २६. श्री सुरेन्द्र सिंह, दिल्ली २७. श्री हिमांशु प्रकाश व श्रीमती दीप्ति मौर्य, पुणे २८. श्री रमेश आर्य, झज्जर २९. श्री जयप्रकाश, विदिशा ३०. श्रीमती सरला मेहता, अजमेर ३१. श्री आर्यमुनि, ऋषि उद्यान, अजमेर ३२. श्री गजेन्द्र सिंह, नवी मुम्बई ३३. श्री अनिल कुमार आर्य, बुलन्दशहर ३४. श्री शिवांश सुपुत्र श्री अरविन्द एवं श्रीमती अंजलि प्रताप, दिल्ली ३५. श्रीमती मंजु व श्री पुरुषोत्तम शर्मा, अजमेर ३६. वानप्रस्थी अर्जुन मुनि, रोजड़, गुजरात ३७. श्री त्रिलोकचन्द, शामली ३८. अरुणोदय गुरुकुल आश्रम, लखीमपुर ३९. डोडिया हेमन्त सिंह, भावनगर ४०. श्री रामप्रकाश शर्मा, जोधपुर ४१. डॉ. प्रशान्त शर्मा, अजमेर ४२. श्री राधेश्याम अग्रवाल, फरीदाबाद ४३. श्रीमती निर्मला गुप्ता, अजमेर ४४. श्री दिनेश नवाल, अजमेर ४५. श्री राजीव मदान, नई दिल्ली ४६. श्री रमेश मुनि, ऋषि उद्यान, अजमेर ४७. श्रीमती उमा मोंगा, नई दिल्ली।

– परोपकारिणी सभा, अजमेर।

गोभक्तों से निवेदन

ऋषि-उद्यान में परमार्थ हेतु गौशाला संचालित है। गौशाला की गौवों के दूध का वितरण सभी गुरुकुलवासियों, संन्यासियों एवं आगन्तुक अतिथियों में नि:शुल्क किया जाता है। आप सभी गो-भक्तों एवं उदारमना दानदाताओं से सभा का निवेदन है कि गौवों को उत्तम चारा मिले, इसके लिए जो भी सज्जन चारा दान देना चाहें उनका स्वागत है। यदि आप दूरस्थ प्रदेश के हैं तो कृपया चारे हेतु अनुमानित राशि सभा को ड्राफ्ट/चैक/नगद भेज सकते हैं। यशस्वी दानदाताओं के नाम परोपकारी पत्रिका में प्रकाशित किए जाएँगे। आपका दान गौवों के संवर्धन में सहायक होगा।

ऋषि-उद्यान में संचालित गौशाला के दानदाता

(१ नवम्बर से १५ दिसम्बर २०१७ तक)

१. श्री बालमुकुन्द छापरवाल, अजमेर २. श्री रामानन्द छापरवाल, ईचलकरणजी, महाराष्ट्र ३. श्रीमती स्नेहलता, अम्बाला शहर ४. आर्यसमाज, अमरावती ५. श्री दशरथ सिंह चौहान, अजमेर ६. श्री आर्य मित्तल, जयपुर ७. श्री अम्बालाल भगवान जी विश्वकर्मा, मन्दसौर ८. श्रीराम ऑप्टिकल्स, अलवर ९. श्रीमती शान्ता देवी सेथलिया, फरीदाबाद १०. श्री प्रेम खट्टर व श्रीमती सरिता खट्टर, फरीदाबाद ११. श्री वेदरत्न सोनी, जयपुर १२. श्री नानूराम जाट, नागौर १३. श्री गोवर्धन खण्डेलवाल, अजमेर १४. श्री जयनारायण कालानी, पाली १५. श्री वीरेन्द्र दाधीच, अजमेर १६. श्री अरुण मुनि, दिल्ली १७. श्री प्रेमस्वरूप गुप्ता, अजमेर १८. श्री रामकिशोर शर्मा, जयपुर १९. श्री जयदेव शर्मा, जयपुर २०. श्री प्रशान्त शर्मा, जयपुर २१. निशान्त शर्मा, जयपुर २२. श्री विनय लोढ़ा, जयपुर २३. श्री जितेन्द्र गर्ग, जयपुर २४. श्री राजेश लोहिया, जयपुर २५. श्री राधेश्याम सीताराम शर्मा, जयपुर २६. श्री वीरेन्द्र व मोहित शर्मा, जयपुर २७. अमित शर्मा, जयपुर २८. श्री

अजय जैन, जयपुर २९. नितिन अग्रवाल, जयपुर ३०. श्री रवीन्द्र धारीवाल, जयपुर ३१. श्री राधेश्याम, जयपुर ३२. डॉ. नरेन्द्र पारीक, सीकर ३३. श्रीमती उषा देवी मिश्रा, जयपुर ३४. श्री मंगलाराम चौधरी, जोधपुर ३५. श्री सुशील शर्मा, अजमेर ३६. श्रीमती उर्मिला देवी गुप्ता, लखनऊ ३७. श्रीमती कविता, भीलवाड़ा ३८. श्रीमती खुशबू छापरवाल, अजमेर ३९. श्रीमती सुशीला, जोधपुर ४०. पं. फकीरचन्द पवनकुमार, चण्डीगढ़ ४१. श्री धर्मसिंह चौहान, पंचकुला ४२. श्री प्रेम कुमार व श्री जयवीर सिंह, हिसार ४३. डॉ. बद्रीप्रसाद पंचोली, अजमेर ४४. श्री माँगीलाल चौधरी, पाली ४५. डॉ. राजगोपाल मुद्गल, अम्बाला ४६. श्रीमती चम्पादेवी राव व श्री अनिल देव शर्मा, उदयपुर ४७. श्री सत्यप्रकाश विजयकुमार सोनी, अजमेर ४८. श्री ईश्वरचन्द्र आर्य, फरीदाबाद ४९. श्री शिवम शर्मा, मेरठ ५०. श्रीमती कृष्णा अग्रवाल, मेरठ ५१. श्री शिवकुमार अग्रवाल, मेरठ ५२. श्री सुयश अग्रवाल, मेरठ ५३. श्री वृद्धिचन्द्र गुप्त, जयपुर ५४. डॉ. नन्दकिशोर काबरा, ऋषि उद्यान, अजमेर ५५. श्री विजयसिंह गहलोत व श्रीमती कंचन गहलोत, ऋषि उद्यान, अजमेर ५६. श्री विश्वास पारीक, अजमेर ५७. स्वामी देवेन्द्रानन्द, ऋषि उद्यान, अजमेर ५८. श्री सुरेशचन्द गर्ग, अजमेर ५९. श्री रामनरेश गंगवार, सूरत ६०. श्री गोपालाचार्य, बँगलौर ६१. श्री ब्रजमोहन लढ्ढा व श्रीमती स्नेहलता लढ्ढा, ज्वालापुर, हरिद्वार ६२. श्रीमती कुसुम बाई, होशंगाबाद ६३. श्री जय हेमानलिनी, जयपुर ६४. श्री कृष कुमार, हनुमानगढ़ ६५. पशुपालन विभाग, अजमेर ६६. वानप्रस्थी अर्जुन मुनि, रोजड़ ६७. श्री अमित खन्ना, नई दिल्ली ६८. आर्यसमाज पुराना महावीर नगर, नई दिल्ली ६९. श्री वंश खन्ना, नई दिल्ली ७०. श्रीमती पुष्पा भरत पाटन ७१. श्री मोहनलाल जायसवाल, जयपुर ७२. श्री देवकीनन्दन, अजमेर ७३. श्री सौरभ दाधीच, अजमेर ७४. श्री मुमुक्षु मुनि, ऋषि उद्यान, अजमेर ७५. श्री रंगप्पा शंकरलाल, अजमेर ७६. श्री वेदवीर आर्य व श्रीमती आरती आर्य, जयपुर ७७. श्री अनंगपाल सिंह आर्य व श्रीमती सुमनलता आर्य, जयपुर ७८. श्रीमती उमा मोंगा, नई दिल्ली।

- परोपकारिणी सभा, अजमेर।

भजन

आचार्य रामसुफल शास्त्री

तर्ज- साँची कहें तोरे आवन से पहिले.....

दयानन्द जी के आने से पहिले,
नाजुक थी हालत हमार भइया।
शिक्षा नहीं थी, दीक्षा नहीं थी,
सब के सब अनपढ़ नर-नार भइया।।

ओ भइया.....

वेदों का पढ़ना फिर सबको पढ़ाना,
वेदों का सुनना और सबको सुनाना।
ऋषिवर से जाना कि वेदों की शिक्षा,
सबको है पढ़ने का अधिकार भइया।।

ओ भइया.....

भारत था ऋषियों का डेरा,
लुप्त ज्ञान फिर से पग फेरा।
हालत सुधर गयी, शिक्षा संभल गयी,
डी.ए.वी. की है भरमार भइया।।

ओ भइया.....

पढ़ लिखकर हम आगे बढ़े हैं,
शिक्षा के बल पर पैरों खड़े हैं।
जीवन निखर गया, सब कुछ बदल गया,
उस योगी का है उपकार भइया।।

ओ भइया.....

'रामसुफल' नित सन्ध्या-हवन कर,
वैदिक रीति से जीवन सफल कर।
सभ्यता भी मिल गयी, संस्कृति भी मिल गयी,
करें आपस में अच्छा व्यवहार भइया।।

ओ भइया.....

जैसे पवन सब को सुख देता हुआ सब के रहने का स्थान हो रहा है वैसे ही विद्वान् को होना चाहिये।

-महर्षि दयानन्द, यजुर्वेद, भावार्थ ५.४१

दिशाहीन राजनीति : राष्ट्र के लिये घातक है।

महात्मा चैतन्यमुनि

महाभारत के शान्ति-पर्व में लिखा है-**सर्वा विद्या राजधर्मेषु युक्ताः। सर्वे लोकाः राजधर्मेषु प्रविष्टाः, सर्वे धर्माः राजधर्म प्रधानाः।।** समस्त विद्याएँ राजधर्म से सम्बन्धित हैं, सारे लोक राजधर्म के अन्तर्गत हैं, सब धर्मों में राजधर्म प्रधान धर्म है। महाभारत के इस कथन से स्पष्ट हो जाता है कि राजनीति का अपने आप में कितना अधिक महत्त्व है। राजनीति द्वारा ही परिवार, राष्ट्र तथा समाज में सुव्यवस्था का सृजन किया जा सकता है, मगर जहाँ राजनीति ही दिशाहीन हो वहाँ किसी प्रकार की सुव्यवस्था और समरसता की कल्पना करना बेमानी ही होगा। हमारे शास्त्रकारों ने राजनीति के लिए 'राज-धर्म' शब्द का प्रयोग किया है, इसलिए धर्महीन राजनीति की तो हम कल्पना तक भी नहीं कर सकते हैं। इसे अभाग्य ही कहा जा सकता है कि आज की राजनीति धर्म की पटरी से उतरकर मत-मजहब अर्थात् अधर्म की पगडण्डियों में भटक गई है। धर्महीन राजनीति बेलगाम घोड़ी के समान दिशाहीन होकर सर्वत्र विनाश का कारण बन गयी है। जहाँ से धर्म लुप्त हो गया वहाँ नैतिकता का टिक पाना असंभव है। आज के बहुत से राजनेता बड़ी ही बेशर्मी के साथ कहते हैं कि राजनीति में धर्म का हस्तक्षेप नहीं होना चाहिए। यदि उनके इस वक्तव्य का भाव मत एवं मजहब से है, तब तो बात समझ में आती है, मगर यदि वे धर्म को ही राजनीति से बहिष्कृत करना चाहते हैं तो यह बहुत बड़ी विडम्बना है। धर्मविहीन राजनीति ही भ्रष्टाचार को प्रश्रय देती है। धर्म एक ऐसी जीवन-पद्धति है जो व्यक्ति को महान् से महत्तर और महत्तम बनाती है, इसलिए राजनेताओं को अनिवार्यरूप से धार्मिक होना अपेक्षित है। समाज में निश्चितरूप से भ्रष्टाचार ऊपर से ही फैल रहा है। 'यथा राजा तथा प्रजा' की उक्ति को चरितार्थ करता हुआ यह शहरों में ही नहीं बल्कि गांवों तक भी अपने पैर पसार चुका है।

धर्महीन राजनेताओं का दोहरा व्यक्तित्व होता है। वे कहते कुछ और करते कुछ हैं। इस कथनी और करनी की भिन्नता ने राष्ट्र को रसातल में पहुँचा दिया है। यदि राजा धार्मिक होगा तो वह अपनी प्रजा को भी धार्मिक बनाने की दिशा में महत्त्वपूर्ण भूमिका निभा सकता है। धार्मिकता हमें समस्त ऐषणाओं से मुक्त करके दिव्यता प्रदान करती है और जो व्यक्ति स्वयं दिव्यता से परिपूर्ण हो वही दूसरों को भी दिव्य बना सकता है। धार्मिक होने के कारण ही हम विश्वगुरु थे तथा यहाँ पर महाराज जनक, अश्वपति तथा अजातशत्रु जैसे तत्त्ववेत्ता राजा हुआ करते थे। आचार्य चाणक्य जैसे महामन्त्री हुआ करते थे। वे लोग अपनी ऐषणाओं से उपराम होकर प्राणीमात्र का भला सोचने वाले थे। रामराज्य को एक आदर्श राज्य के रूप में आज भी स्मरण किया जाता है। उसका कारण क्या था, इस सम्बन्ध में महात्मा तुलसीदास जी कहते हैं-

दैहिक दैविक भौतिक तापा, राम राज्य नहीं काहुहिं व्यापा।
सब नर करहिं परस्पर प्रीति चलहिं स्वधर्मनिरत श्रुति-नीति।।

रामराज्य का आधार वैदिक धर्म बताया गया है। सभी लोग वैदिक धर्म का पालन करते थे, इसलिए किसी को भी किसी प्रकार का दुःख नहीं था, इसीलिए कहा गया है-**सुखस्य मूलं धर्मः** अर्थात् धर्म ही समस्त सुखों का आधार है। आज अभाग्य से लोग मत-मज़हब को ही धर्म मानने की भारी भूल कर रहे हैं, इसीलिए धर्म को आज सब दुःखों का मूल माना जाने लगा है। यह तो ऐसा ही है जैसे कोई रेत को फाँक कर कहे कि गुड़ मीठा नहीं होता है। आज बाहर के चिह्न धारण करने को ही धर्म मान लिया गया है, जबकि धर्म तो कुछ विशेष मानवीय गुणों को धारण करना है। मनु महाराज ने साफ शब्दों में कहा है- **'न लिङ्गं धर्म-कारणम्'**। अर्थात् बाहर के चिह्न धारण कर लेना धर्म नहीं है। जैमिनी मुनि जी ने अपने मीमांसा दर्शन में एक सूत्र दिया है-**चोदनालक्षणोऽर्थो धर्मः**। वैशेषिक दर्शन का कथन है-**यतोऽभ्युदयनिःश्रेयससिद्धिः स धर्मः**।

ईश्वर ने वेदों में मनुष्यों के लिए जिसके करने की आज्ञा दी है, वही धर्म और जिसके करने की प्रेरणा नहीं की है, वही अधर्म कहाता है, परन्तु वह धर्म अर्थयुक्त अर्थात् अधर्म का आचरण जो अनर्थ है उससे अलग होता

है। इससे धर्म का जो आचरण करना है, वही मनुष्यों में मनुष्यपन है। जिसके आचरण करने से संसार में उत्तम सुख और निःश्रेयस अर्थात् मोक्षसुख की प्राप्ति होती है, उसी का नाम धर्म है तथा यह वेदोक्त धर्म ही मानव धर्म एवं व्यक्ति के चतुर्दिक विकास का आधार है।

आज धर्म के नाम पर अनेक प्रकार के पाखण्ड पनपने का कारण भी वेद-ज्ञान का अभाव ही है। मनु महाराज जी का भी कथन है-

धर्म जिज्ञासमानानां प्रमाणं परमं श्रुतिः।

अर्थात् धर्म के जिज्ञासुओं के लिए परम प्रमाण वेद है। हमारे मनीषियों का यह भी कथन है- **वेदोऽखिलो धर्ममूलम्**। अर्थात् वेद का प्रत्येक शब्द धर्म-मूलक है। वेद का आदेश है-

सं गच्छध्वं सं वदध्वम्...

अर्थात् हे मनुष्य लोगो! जो पक्षपातरहित न्याय, सत्याचरण से युक्त धर्म है, तुम लोग उसी को ग्रहण करो, उससे विपरीत कभी मत चलो, किन्तु उसी की प्राप्ति के लिए विरोध को छोड़ के परस्पर सम्मति में रहो, जिससे तुम्हारा उत्तम सुख सब दिन बढ़ता जाय और किसी प्रकार का दुःख न हो... जैसे पक्षपातरहित धर्मात्मा, विद्वान् लोग वेद-रीति से सत्यधर्म का आचरण करते हैं, उसी प्रकार से तुम भी करो... तुम लोग इसी को धर्म मानकर सदा करते रहो और इससे भिन्न को धर्म कभी मत मानो... तुम्हारा सब पुरुषार्थ सब जीवों के सुख के लिए सदा हो, जिससे मेरे कहे धर्म का कभी त्याग न हो और सदा वैसा ही प्रयत्न करते रहो कि जिससे तुम्हारे हृदय अर्थात् मन के सब व्यवहार आपस में सदा प्रेमसहित और विरोध से अलग रहें...। यजुर्वेद का कथन है-**दृते दृहं मा मित्रस्य...** अर्थात् मनुष्य लोग आपस में सब प्रकार के प्रेमभाव से सब दिन बर्तें और सब मनुष्यों को उचित है कि जो वेदों में ईश्वरोक्त धर्म है, उसी को ग्रहण करें और वेद-रीति से ही ईश्वर की उपासना करें, जिससे सब मनुष्यों की धर्म में ही प्रवृत्ति हो...। मुण्डकोपनिषद् में कहा गया है-**सत्येन लभ्यस्तपसा...** जो सत्य का आचरण करने वाला है, वही मनुष्य सदा विजय और सुख को प्राप्त होता है और जो मिथ्या आचरण अर्थात् झूठे कामों को करने वाला है, वह सदा पराजय और दुःख ही को प्राप्त होता है। धर्मात्मा लोग सत्य से उस सुख को प्राप्त होते हैं, असत्य से कभी नहीं। इससे सत्य धर्म का आचरण और असत्य का त्याग करना सब मनुष्यों को उचित है। धर्म की कसौटी बताते हुए मनु महाराज कहते हैं-

वेदः स्मृति सदाचारः, स्वस्य च प्रियमात्मनः।
एतच्चतुर्विधं प्राहुः, साक्षाद्धर्मस्य लक्षणम्।।

(मनु. २-१२)

श्रुतिस्मृत्युदितं धर्ममनुतिष्ठन् हि मानवः इह
कीर्त्तिमवाप्नोति, प्रेत्य चानुत्तमं सुखम्।।

(मनु २-९)

उनके अनुसार वेद, स्मृति-शास्त्र, सत्पुरुषों का आचरण और स्व-आत्मा की प्रियता इन चारों को विद्वानों ने धर्म का साक्षात् लक्षण कहा है। वेद और स्मृति में प्रतिपादित धर्म का अनुष्ठान करने वाला मनुष्य इस लोक में यश को प्राप्त करता है और मरणोपरान्त अत्यन्त सुख को प्राप्त होता है। जो वेदादि शास्त्रों में विवेचित धर्म को मानकर उसका आचरण करता है, वास्तव में वही धार्मिक व्यक्ति है, अन्य नहीं। इस सम्बन्ध में मनु जी का कथन है-

आर्षं धर्मोपदेशं च, वेदशास्त्राविरोधिना।
यस्तर्केणाऽनुसन्धत्ते, स धर्म वेद नेतरः।।

(मनु. १२-१०६)

अनाम्नातेषु धर्मेषु, कथं स्यादिति चेद्भवेत्।
यं शिष्टा ब्राह्मणा ब्रूयुः, स धर्मः स्यादशंकितः।।

(मनु. १२-१०८)

जो मनुष्य वेदानुसार अन्य ऋषियों द्वारा बताए गए धर्मोपदेश का तर्कपूर्वक अनुसन्धान करता है वही धर्म को समझता है, अन्य नहीं। जिन धर्मों अर्थात् कर्त्तव्यों के विषय में वेदादि शास्त्रों में स्पष्ट उल्लेख न हो, उनके विषय में क्या करें? ऐसी समस्या उपस्थित होने पर वर्तमान आप्त, ब्राह्मण विद्वान् जैसा निर्णय दें-निस्सन्देह वही धर्म है, ऐसा जानें। ऐसे वेदानुसार धर्म का अनुपालन करना चाहिए, क्योंकि आत्मा और धर्म ही नित्य है। इस सम्बन्ध में महाभारतकार (महा. उद्यो. ४०/१२,१३) कहता है- हे प्रिय! मैं तुम्हें इस अतिविशिष्ट, सबसे श्रेष्ठ और पुण्यकारी विशेष ज्ञातव्य रहस्य को बताता हूँ-मनुष्य काम, भय अथवा लोभ के

कारण से धर्म को न त्यागे, जीवन-लाभ के कारण से भी धर्म को न छोड़े...क्योंकि धर्म नित्य है और सुख-दुःख अनित्य है...जीवात्मा नित्य है और उसको संसार में प्रवृत्त करने वाले विषय आदि अनित्य हैं...अतः अनित्य का त्याग करके नित्य में स्थिर हो जाओ...इसी में सन्तुष्ट रहो...सन्तोषपरायणता ही सच्चा लाभ है...। वे कौन से धर्म के लक्षण हैं जिनका त्याग नहीं करना चाहिए? मनु जी इस सम्बन्ध में कहते हैं-

धृतिः क्षमा दमोऽस्तेयं, शौचमिन्द्रियनिग्रहः।
धीर्विद्या सत्यमक्रोधो दशकं धर्मलक्षणम्।।

(मनु. ६-९२)

अर्थात् धैर्यशीलता, क्षमाशीलता, दृढ़ता, किसी की चोरी न करना, भीतर-बाहर की पवित्रता, इन्द्रियों का संयम, बुद्धिमत्ता, ज्ञानशीलता, सत्यता और अक्रोधी होना ये दस धर्म के लक्षण हैं। इन्हें अपने आचरण में लाने से ही व्यक्ति का लोक-परलोक सँवर सकता है। ऐसा व्यक्ति ही अपने और अपने परिवार एवं समाज का भला कर सकता है। ये मानवतावादी सूत्र ही हैं जो आज दुःखी मानवता के आँसू पोंछ सकते हैं तथा मत, मजहब और सम्प्रदाय के खूनी पंजे से हमें मुक्ति दिला सकते हैं। वैदिक साहित्य में व्यक्ति को समाज की मूल ईकाई मानकर उसी के चरित्रादि के विकास की प्रेरणा दी गई है, क्योंकि व्यक्तियों के समूह से ही समाज बनता है। इस प्रकार व्यक्ति का सुधार ही समाज का सुधार है तथा व्यक्ति का विकास ही समाज के विकास का भी मूल आधार है। धर्म के उपरोक्त तत्त्व ही व्यक्ति के चतुर्दिक विकास का आधार हैं।

मनु महाराज जी के उपरोक्त सूत्रों का भाव समझकर इन्हें समग्ररूप से राजनीति में आत्मसात् करने से ही आज परिवार, समाज एवं देश का और विश्व का भला हो सकता है। इन गुणों से परिपूर्ण राजा या राज्य-व्यवस्था ही सही लोकतन्त्र की पहचान है। इसी से भ्रातृभाव एवं सामाजिक समरसता का सृजन हो सकता है। इन्हीं स्वर्णिम सिद्धान्तों पर चलकर व्यक्ति के भीतर दया, क्षमा, परोपकार तथा सामूहिक विकास की भावना पैदा हो सकती है और यही आदर्शवाद आज की कुत्सित राजनीति को राज-धर्म के पद पर आसीन कर सकने में समर्थ है।

मानव हो मानवता धारो

पं. नन्दलाल निर्भय

ईश्वर का उपकार भुलाना, ठीक नहीं-ठीक नहीं।
मानव जीवन व्यर्थ गंवाना, ठीक नहीं-ठीक नहीं।।
ईश्वर ने कृपा की भारी। मानव देह हमें दी प्यारी।
मानव होकर पाप कमाना, ठीक नहीं-ठीक नहीं।
मानव जीवन..... ।१।।

बली बनो शुभ कर्म करो तुम,
दुष्कर्मों से सदा डरो तुम।
निर्दोषों को कभी सताना, ठीक नहीं-ठीक नहीं।
मानव जीवन.....।। २।।

धनी बनो, बन जाओ दानी,
जग में कर दो, अमर कहानी।
धन-दौलत पा, लोभ दिखाना, ठीक नहीं-ठीक नहीं।
मानव जीवन.....।। ३।।

विद्या पढ़, विद्वान् बनो तुम,
मानवता की शान बनो तुम।
विद्या पाकर ज्ञान छुपाना, ठीक नहीं-ठीक नहीं।
मानव जीवन.....।। ४।।

बनो सज्जनो! परोपकारी,
रामकृष्ण जैसे बलधारी।
दुष्ट जनों का साथ निभाना, ठीक नहीं-ठीक नहीं।
मानव जीवन.....।। ५।।

बनो तपस्वी, सच्चे त्यागी,
दयानन्द ऋषि से वैरागी।
ज्ञानी बन पाखण्ड बढ़ाना, ठीक नहीं-ठीक नहीं।
मानव जीवन.....।। ६।।

अर्जुन जैसे वीर बनो तुम,
वीर शिवा, हम्मीर बनो तुम।
कभी मुसीबत में घबराना, ठीक नहीं-ठीक नहीं।
मानव जीवन.....।। ७।।

ईश्वर-भक्त महान् बनो तुम,
देशभक्त गुणवान् बनो तुम।
विकलांगों की हँसी उड़ाना, ठीक नहीं-ठीक नहीं।
मानव जीवन.....।। ८।।

मानव हो मानवता धारो,
काम, क्रोध, मद, लोभ बिसारो।
सत्संग में रोड़ा अटकाना, ठीक नहीं-ठीक नहीं।
मानव जीवन.....।। ९।।

'नन्दलाल निर्भय' अब जागो,
द्वेष-ईर्ष्या-घृणा त्यागो।
गन्दे गीत बनाना, गाना ठीक नहीं-ठीक नहीं।
मानव जीवन.....।। १०।।

पाठकों की प्रतिक्रिया

माननीय सम्पादक जी, सादर नमस्ते।

आर्यजगत् में विभिन्न स्थानों से अनेक पत्र-पत्रिकाएँ प्रकाशित होती हैं, जिनमें साप्ताहिक, पाक्षिक, मासिक आदि हैं और प्रत्येक में वैदिक विषयों पर बहुत अच्छी प्रेरणादायी सामग्री छपती है, जो पाठक की जानकारी में वृद्धि करने के साथ सत्य के ग्रहण करने तथा असत्य को छुड़ाने में सहायक है। फिर भी 'परोपकारी' पाक्षिक का अपना अलग महत्त्व है। वैसे तो प्रत्येक आर्य पत्रिका की अपनी-अपनी विशेषता है, परन्तु 'परोपकारी' एक तो महर्षि दयानन्द की उत्तराधिकारिणी सभा का मुख-पत्र है, दूसरे इसमें वैदिक वाङ्मय पर अति गम्भीर विषय पर भी सरल लेख प्रस्तुत किए जाते हैं। 'परोपकारी' के किसी भी अंक को लेकर देख लेवें, चाहे वह पुराना हो अथवा नवीन, उसके लेख समान रूप से रुचिकर एवं ज्ञानवर्धक होते हैं। उदाहरण के तौर पर अक्टूबर द्वितीय २०१७ को ही लें। इसके सम्पादकीय में-'**महर्षि दयानन्द और साम्प्रदायिकता**' में विषय पर लेख अति संक्षिप्त होते हुए भी स्वामी जी का दृष्टिकोण स्पष्ट कर दिया गया है। नए सम्पादक ने भी पाक्षिक के महत्त्व को कम नहीं होने दिया है, बल्कि इस बारे में वे सतर्क और सावधान बने हुए हैं। '**ईश्वर का जन्म-२**' प्रवचनमाला में वेदों/शास्त्रों के उद्धरण से सरल शैली में ईश्वर-जन्म सिद्ध किया है। '**दीपावली का रामकथा से सम्बन्ध-एक भ्रम**' में नवसस्येष्टि के बारे में संक्षेप से अच्छा प्रकाश डाला है। '**कुछ तड़प-कुछ झड़प**' का तो कहना ही क्या है? हर बार नए तथ्यों की जानकारी से परिपूर्ण लेख होता है। शैली भी निराली है।

आचार्य उदयवीर शास्त्री के लेख '**महर्षि दयानन्द के ईश्वर-जीव प्रकृति...।**' में द्वैत, अद्वैत, त्रैतवाद जैसे गम्भीर विषय को सरल भाषा में प्रस्तुत किया गया है। कृपया इसमें ईश्वर की परिभाषा में 'आर्यसमाज के नियम, सं. ३ की जगह नियम सं. २ कर लिया जावे, जो कि गलत छप गया है। इसी प्रकार ''जीव और ईश्वर का सम्बन्ध''- में स्वमन्तव्यामन्तव्य प्रकाश, ५ वाले गद्य भाग में '' ...और न कभी एक था, न है, न होगा।'' कर लिया जावे।' अर्थात् और के बाद (न) छपने से रह गया। कभी-कभी आदरणीय युधिष्ठिर जी मीमांसक के लेख भी आने चाहिए। उनकी स्मृति भी बनी रहे। स्वामी मुक्तानन्द परिव्राजक के लेख ''**दर्शन विद्या का महत्त्व**'' से लेखक की स्वाध्यायशीलता, वैदुष्य के साथ उनके मस्तिष्क में विषय की स्पष्टता का पता चलता है। इसी प्रकार ८वाँ व १०वाँ लेख भी प्रभावशाली है।

माननीय **डॉ. वेदपाल जी द्वारा 'शङ्का-समाधान'** स्तम्भ में हर बार वेद एवं ऋषि प्रणीत ग्रन्थों के उद्धरण देकर पर्याप्त सामग्री देते हुए विषय को स्पष्ट किया जाता है, परन्तु यहाँ यह ध्यान रखा जाना चाहिए कि एक ही जिज्ञासु-वन्दना शास्त्री , गुरुकुल दाधिया की हर बार शङ्का-समाधान देने की बजाय बीच-बीच में अन्य जिज्ञासुओं को भी ले लिया जाना चाहिए। अन्यथा अन्यों का तो कभी नम्बर ही नहीं पड़ेगा।

उदाहरण के तौर पर भिवानी जिले के ३/४ जिज्ञासु ५०० से ऊपर शंकाएँ लेकर कुछ समय पहले एक विद्वान् से मिले तो उन्होंने १५० से ऊपर शंकाओं का समाधान कर दिया और शेष के लिए एक अन्य विद्वान्, जो गुड़गाँव में रहते थे, के पास जाने के लिए कहा, तो उन्होंने कुछ समय बाद उन जिज्ञासुओं से आने के लिए कहा, परन्तु कुछ समय बाद उनकी मृत्यु हो गई, अर्थात् विद्वान् की। अब यह पता नहीं है कि जिज्ञासुओं की मृत्यु से पहले उनकी शेष शंकाओं का समाधान हो सकेगा या नहीं? वास्तव में समाधान तो समाधि में ही मिल पाता होगा।

कुल मिलाकर पाक्षिक का सौष्ठव गौरवमय है। अतः भविष्य के लिए शुभकामना सहित-

विदुषामनुचर- इन्द्रसिंह पूर्व एस.डी.एम.,
भिवानी, हरियाणा

टिप्पणी- मान्य इन्द्रसिंह जी, आप परोपकारी के गम्भीर पाठक हैं- यह जानकर प्रसन्नता हुई। आचार्य उदयवीर जी के लेख में रह गई त्रुटियों के लिये हमें खेद है। आपका सुझाव है कि हर बार एक ही व्यक्ति की शंकाओं का समाधान न होकर अन्यों को भी अवसर मिलना चाहिये। वंदना शास्त्री जी की यज्ञ-सम्बन्धी शंकाएँ एक ही पत्र में आईं थीं, इसलिये सभी प्रश्नों का समाधान एक साथ ही कर दिया गया है। अन्यों की जिज्ञासाएँ भी समाधान के क्रम में है। आपकी प्रतिक्रियाएँ ही हमारी मार्गदर्शक हैं, अतः आगे भी प्रतिक्रिया देते रहें। धन्यवाद।

-सम्पादक

आर्यजगत् के समाचार

१. महर्षि दयानन्द सरस्वती की उत्तराधिकारिणी परोपकारिणी सभा द्वारा संचालित गुरुकुल आश्रम जमानी, इटारसी, म.प्र. का वार्षिकोत्सव दि. १९, २०, २१ जनवरी २०१८ को मनाया जा रहा है। यह आश्रम अपने क्षेत्र में आर्यसमाज एवं वैदिक विचारधारा के प्रचार-प्रसार में सतत प्रयत्नशील है। आप सभी उत्सव में सादर आमन्त्रित हैं। **सम्पर्क- ९१३१९६९१७३**

२. वार्षिकोत्सव- गुरुकुल प्रभात आश्रम भोला झाल, टीकरी, मेरठ में मकर सौर संक्रान्ति के अवसर पर १३ व १४ जनवरी २०१८ को वार्षिकोत्सव मनाया जा रहा है। कार्यक्रम में स्वामी समर्पणानन्द सरस्वती (पं. बुद्धदेव विद्यालंकार) की ४९वीं पुण्यतिथि के अवसर पर अखिल भारतीय वैदिक शोध संगोष्ठी का आयोजन किया जा रहा है, जिसका विषय है- 'उपनिषदों में विविध विद्याएँ'। १० जनवरी को आरम्भ किये गये यजुर्वेद पारायण महायज्ञ की पूर्णाहुति, नवप्रविष्ट ब्रह्मचारियों का उपनयन संस्कार तथा वेदारम्भ संस्कार १४ जनवरी को होगा। **सम्पर्क- ०८९२३५९१८७२**

३. बलिदान दिवस- आर्यसमाज महर्षि दयानन्द नगर तलवण्डी, कोटा, राज. का ४१वाँ वार्षिक उत्सव एवं अमर हुतात्मा स्वामी श्रद्धानन्द बलिदान दिवस दि. २२ से २४ दिसम्बर २०१७ को मंशापूर्ण हनुमान जी का मन्दिर, सैक्टर २-३, तलवण्डी, कोटा में मनाया जायेगा। कार्यक्रम में विद्वान् उमेश कुलश्रेष्ठ-आगरा, उदयवीरसिंह शास्त्री-मथुरा, पं. बिरधीचन्द शास्त्री-कोटा राज., पं. अग्निमित्र शास्त्री-कोटा के प्रवचन होंगे। **सम्पर्क- ०९८२९७५७००७, ०९७९९०३६५३०**

४. वेदकथा- आर्यसमाज नया बाँस, हाथरस द्वारा २५ से २९ नवम्बर २०१७ तक वेद कथा का आयोजन किया गया। वेद कथा में आचार्य संजीव रूप ने अनेक विषयों पर प्रकाश डाला। इस अवसर पर हाथरस की अनेक समाजों के मन्त्री, प्रधान और सासनी कन्या गुरुकुल की संचालिका श्रीमती पवित्रा विद्यालंकार और अनेक सन्त उपस्थित रहे।

५. शिविर सम्पन्न- आर्यवीर दल देवीकोट जैसलमेर द्वारा ८ दिवसीय योग, व्यायाम एवं चरित्र निर्माण शिविर का आयोजन किया गया, जिसमें ६५ आर्यवीरों ने भाग लिया। शिविर संयोजक अमृतसिंह आर्य, व्यायाम शिक्षक भागचन्द आर्य, जिला संचालक गगेन्द्रसिंह आदि ने प्रशिक्षण प्रदान किया तथा छोटूसिंह, भंवरलाल, उगमसिंह, नेपालसिंह, जयप्रकाश आदि ने सहयोग दिया।

६. प्रतियोगिता- १९ नवम्बर २०१७ को आर्यसमाज खेड़ा अफगान और वैदिक संस्कृति उत्थान के संयुक्त तत्त्वावधान में वैदिक संस्कृति ज्ञानवर्धिनी प्रतियोगिताओं का परिणाम व पारितोषिक वितरण का कार्यक्रम समारोहपूर्वक मनाया गया।

७. वार्षिकोत्सव- आर्यसमाज शहर, बड़ा बाजार, सोनीपत की ओर से सैक्टर १४ स्थित सामुदायिक केन्द्र में १३ से १९ नवम्बर २०१७ तक आयोजित १०१वें वार्षिकोत्सव के दौरान क्रियात्मक योग प्रशिक्षण शिविर का आयोजन किया गया। प्रतिभागी ४५ शिविरार्थियों को ईश्वर, धर्म, योग के सच्चे स्वरूप का बोध, शास्त्र-परिचय के साथ-साथ ध्यान का क्रियात्मक प्रशिक्षण भी दिया गया। समापन सभा में आर्यसमाज के शताब्दी वर्ष-२०१६ के निमित्त शताब्दी स्मारक ग्रन्थमाला प्रकाशन समिति की ओर से पुनः प्रकाशित ग्रन्थों का विमोचन किया गया।

अग्नि और जल संसार के सब व्यवहारों के कारण हैं, इस से गृहस्थजन विशेष कर अग्नि और जल के गुणों को जानें और गृहस्थ के सब काम सत्य व्यवहार से करें। **- महर्षि दयानन्द, यजुर्वेद, भावार्थ ८.२४**

इस बात का निश्चय है कि ब्रह्मचर्य्य, उत्तम शिक्षा, विद्या, शरीर और आत्मा का बल, आरोग्य, पुरुषार्थ, ऐश्वर्य, सज्जनों का संग, आलस्य का त्याग, यम-नियम और उत्तम सहाय्य के विना किसी मनुष्य से गृहाश्रम धारा जा नहीं सकता।

- महर्षि दयानन्द, यजुर्वेद, भावार्थ ८.३१